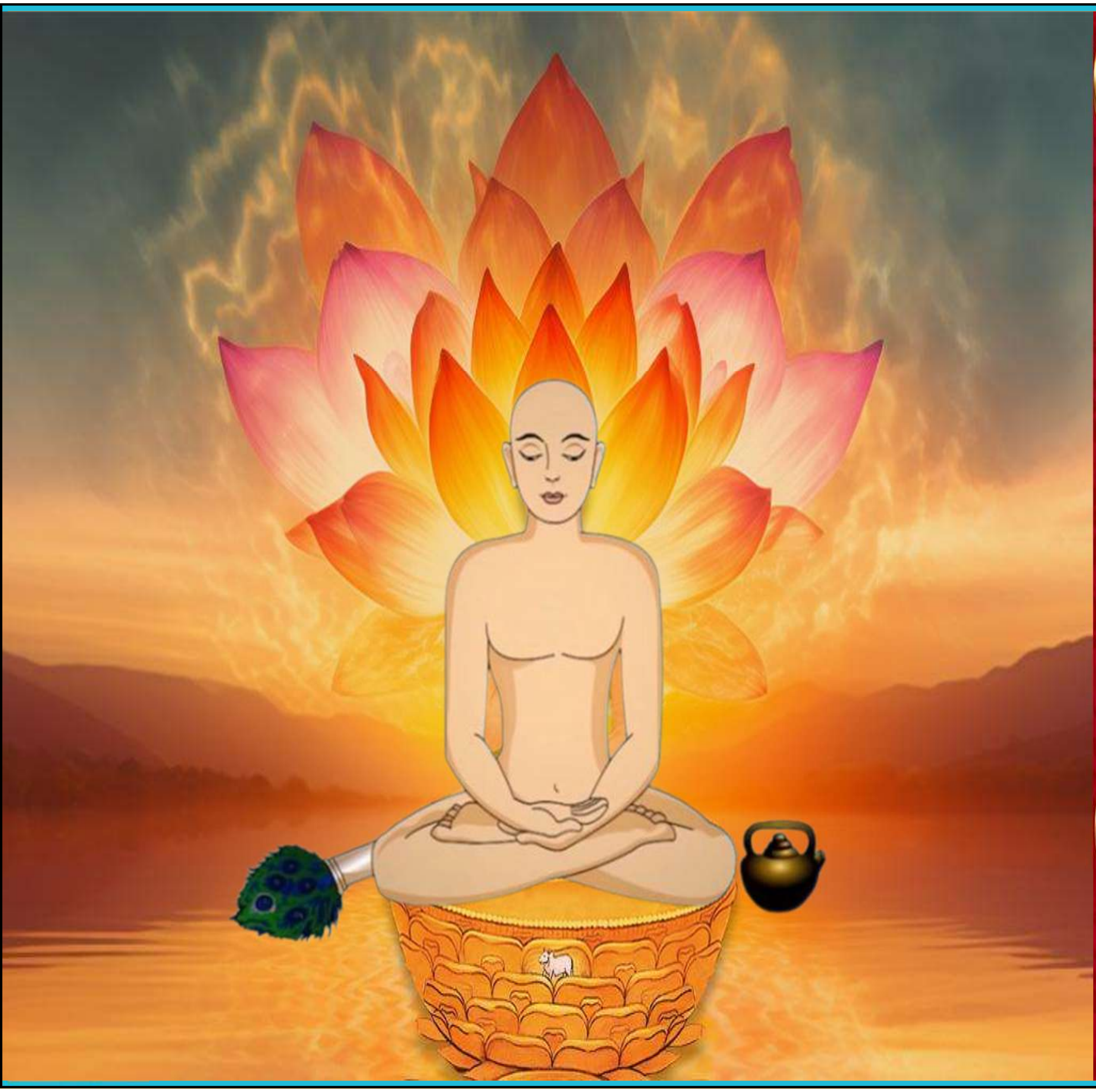

चारित्रमोह-उपशमन अधिकार 5

Presentation Developed By:
Smt Sarika Vikas Chhabra

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे, आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥1॥

उवसमियसकलदोसे, उवसंतकसायवीयरायांते ।
उवसमगे हं पणमिय, कसायउवसामणं वोच्छं ॥205॥

- अन्वयार्थ- (उवसमियसकलदोसे) संपूर्ण दोषों का उपशमन किये हुए (उवसंतकसायवीयरायांते) उपशांतकषाय वीतराग पर्यन्त के (उवसमगे) उपशमकों को (पणमिय) नमस्कार करके (हं) मैं (नेमिचन्द्राचार्य) (कसायउवसामणं) कषायों के उपशमन को (उपशमनविधि को) (वोच्छं) कहता हूँ ॥205॥

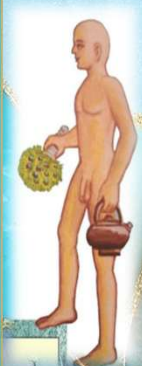

मंगल

जिनके सारे दोष उपशमित हो गए हैं, ऐसे उपशांतकषाय-वीतराग तक के उपशमकों को नमस्कार करके

प्रतिज्ञा

कषायों के उपशमन की विधि को कहता हूँ ।

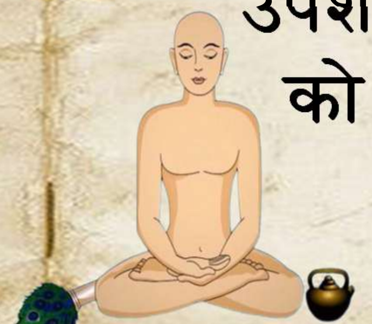

अर्थात् 8, 9, 10, 11वें गुणस्थानवर्ती उपशमकों को नमस्कार करता हूँ ।

उवसमचरियाहिमुहो, वेदगसम्मो अणं विजोयित्ता ।
अंतोमुहुत्तकालं, अधापवत्तोऽपमत्तो य ॥206॥

- अन्वयार्थ- (उवसमचरियाहिमुहो) उपशम चारित्र के सम्मुख होने वाला (वेदगसम्मो) वेदक सम्यग्दृष्टि (अणं) अनन्तानुबन्धी का (विजोयित्ता) विसंयोजन करके (अंतोमुहुत्तकालं) अंतर्मुहूर्त कालपर्यन्त (अधापवत्तोऽपमत्तो य) अध:प्रवृत्त अप्रमत्त अर्थात् स्वस्थान अप्रमत्त होता है ॥206॥

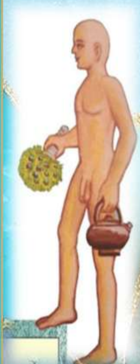

अनंतानुबंधी की विसंयोजना

उपशम चारित्र के अभिमुख वेदक सम्यग्दृष्टि प्रथमतः अनंतानुबंधी कषाय की विसंयोजना करता है ।

उपशम श्रेणी चढ़ने के पूर्व अनंतानुबंधी का क्षय अनिवार्य है । इसके क्षय को विसंयोजना कहते हैं ।

चूँकि अनंतानुबंधी का अप्रशस्त उपशम ही माना गया है । इसलिए इसका अभाव करके ही उपशम श्रेणी पर आरोहण हो सकता है ।

जैसे दर्शन मोहनीय का अंतरकरणरूप प्रशस्त उपशम होता है वैसा अनंतानुबंधी का नहीं होता है । इसका उदय के अभाव रूप अप्रशस्त उपशम तो होता है, पर अंतरकरणरूप नहीं । इस कारण इसकी विसंयोजना करना अनिवार्य है ।

अनंतानुबंधी की विसंयोजना

विसंयोजना के लिये तीन करण परिणाम किये जाते हैं। करण परिणाम के बिना अनंतानुबंधी का क्षय नहीं होता।

जैसी विसंयोजना की विधि क्षायिक सम्यक्त्व अधिकार में कही है, वह पूर्णतः यहाँ भी जान लेना चाहिए।

वेदक सम्यक्त्व अथवा उपशम सम्यक्त्व में विसंयोजना की जा सकती है। अतः असंयत, देशसंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत – इन चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में विसंयोजना होती है।

विसंयोजना के पश्चात् कोई जीव क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त ना करे और पुनः मिथ्यात्व में आ जाये तो अनंतानुबंधी पुनः संयोजित हो जाती है, सत्ता में आ जाती है इसलिए इसके क्षय को विसंयोजना कहा जाता है।

क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने के पश्चात् अनंतानुबंधी पुनः संयोजित नहीं हो सकती है।

श्रेणी में सम्यक्त्व – उपशम या क्षायिक ?

विसंयोजना करके स्वस्थान अप्रमत्त होकर प्रमत्त-अप्रमत्त में हजारों बार परावर्तन करके विश्राम करता है ।

इसके पश्चात् वेदक सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करके अथवा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके चारित्र मोह का उपशमन करना प्रारंभ करता है ।

वेदक सम्यग्दृष्टि के दर्शन मोह की सम्यक्त्व प्रकृति का उदय रहता है । उस उदय के रहते हुए उपशांतमोह कैसे हो सकेगा ? सर्व मोह का अनुदय होने पर उपशांतमोह को प्राप्त होता है । इसलिए सम्यक्त्व प्रकृति के उदय का भी अभाव करने हेतु या तो क्षायिक सम्यक्त्व हो या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व हो ।

क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति की विधि जैसे पूर्व में कही है, उसी प्रकार यहाँ संभव है ।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व

उपशम श्रेणी चढ़ने के सन्मुख अवस्था में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से जो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने की प्रक्रिया 4-7वे गुणस्थान में होती है ।

यह जीव पहले अनंतानुबन्धी की विसंयोजना कर लेता है ।

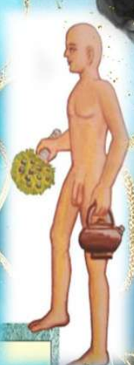

श्रेणी आरोहण कौन करता है?

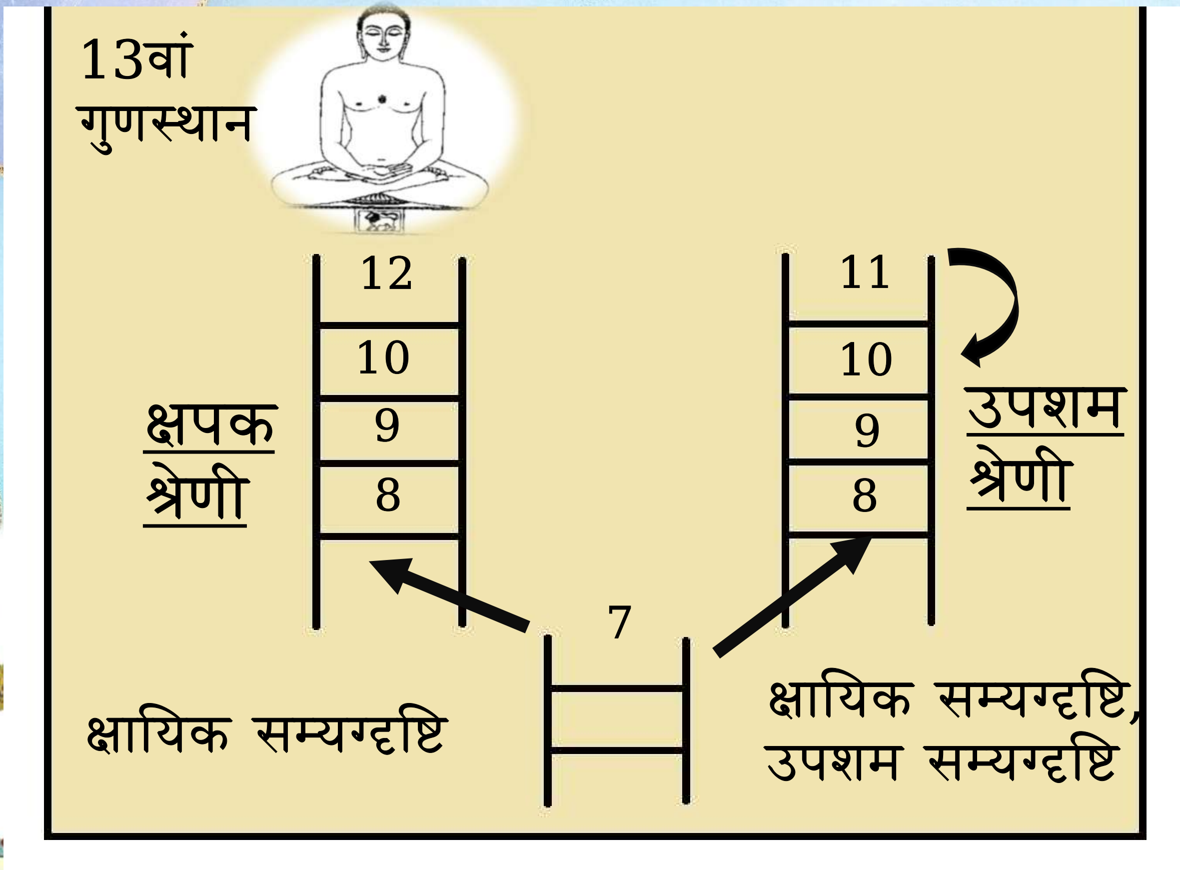

क्षायिक सम्यग्दृष्टि मुनिराज उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी आरोहण कर सकते हैं।

उपशम सम्यग्दृष्टि मुनिराज उपशम श्रेणी ही आरोहण कर सकते हैं, क्षपक श्रेणी नहीं ।

अध:प्रवृत्तकरण प्रारंभ करते हैं।

विश्राम करके

दर्शन मोह का उपशम करें । अथवा दर्शन मोह की क्षपणा करें ।

फिर विश्राम करके

अनंतानुबंधी की विसंयोजना करके

क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी मुनिराज

श्रेणी चढ़ने की विधि

अथवा

क्षायिक सम्यक्त्वी अप्रमत्त मुनिराज

अधःप्रवृत्तकरण करते हैं ।

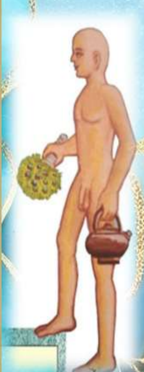

तत्तो तियरणविहिणा, दंसणमोहं समं खु उवसमदि । सम्मत्तुप्पत्तिं वा, अण्णं च गुणसेढिकरणविही ॥207॥

- अन्वयार्थ - (तत्तो) उसके बाद (अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करने के बाद) (तियरणविहिणा) त्रिकरण विधि द्वारा (दंसणमोहं) तीन दर्शनमोह का (समं खु) एक ही समय में (उवसमदि) उपशम करता है।
- (गुणसेढिकरणविही) गुणश्रेणिकरणविधि (च) और (अण्णं) अन्य विधि (स्थितिकांडकघातादि विधि) (सम्मत्तुप्पत्तिं वा) प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समान जानना चाहिए ॥207॥

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की विधि

वेदक सम्यग्दृष्टि तीन करण के द्वारा दर्शन मोह की तीनों प्रकृतियों का उपशमन करता है ।

जैसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व के तीन करण कहे थे, वैसे ही यहाँ पर भी तीन करण परिणाम करता है ।

अध:प्रवृत्तकरण के पश्चात् अपूर्वकरण करता है ।

अपूर्वकरण में स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात तथा गुणश्रेणी करता है । परन्तु यहाँ गुणसंक्रमण नहीं होता ।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के प्रस्थापक, निष्ठापक

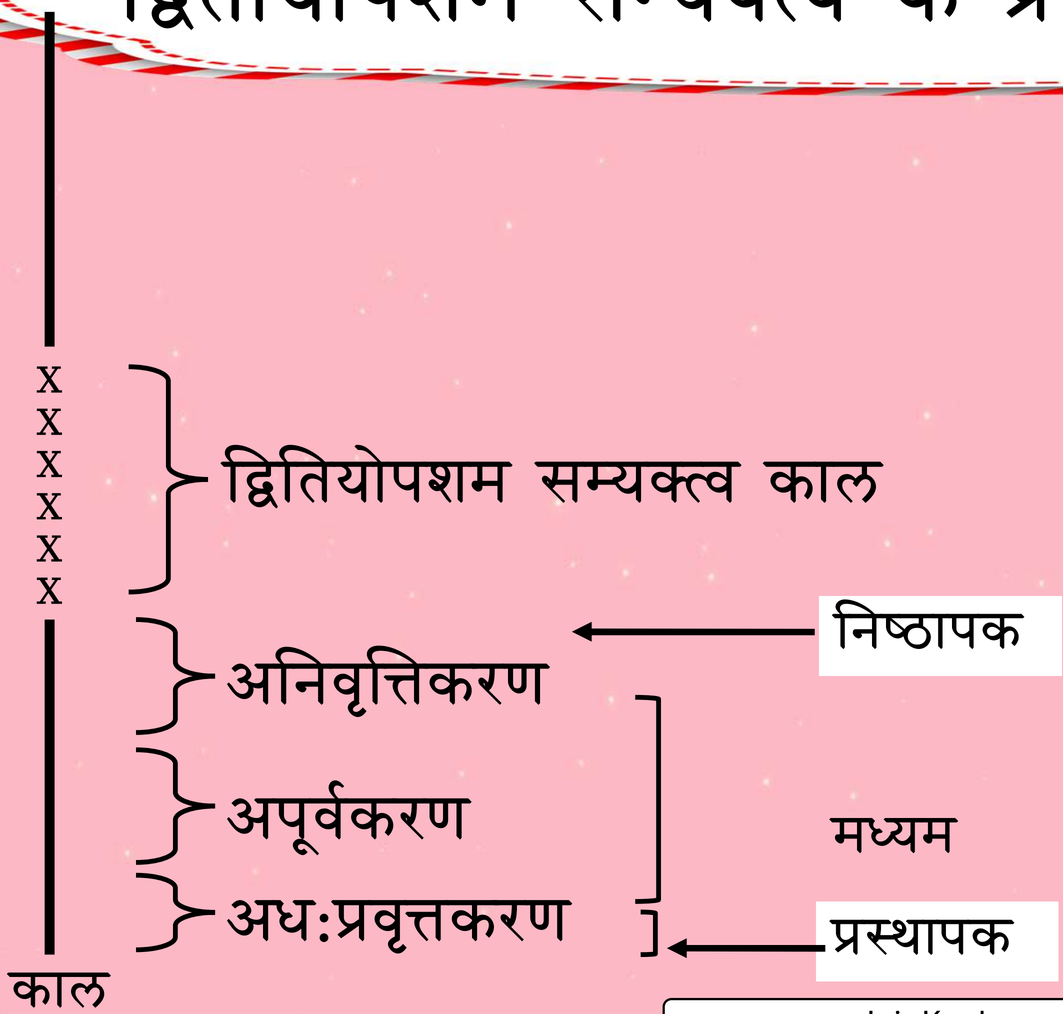

प्रस्थापक

- द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के लिये प्रक्रिया प्रारंभ करने वाला ।
- यह अधःप्रवृत्तकरण का प्रथम समय है।

निष्ठापक

- द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के लिये प्रक्रिया समाप्त करने वाला ।
- यह अनिवृत्तिकरण का अंतिम समय है।

www.JainKosh.org

दंसणमोहुवसमणं, तक्खवणं वा हु होदि णवरिं तु । गुणसंकमो ण विज्जदि, विज्झद वाधापवत्तं च ॥208॥

- अन्वयार्थ- (दंसणमोहुवसमणं) दर्शनमोह् का उपशमन (वा) अथवा (तक्खवणं) उसका क्षपण (होदि) होता है।
- (णवरिं तु) परन्तु विशेष यह है कि (गुणसंकमो) गुणसंक्रमण (ण विज्जदि) नहीं होता है, (विज्झद वाधापवत्तं च) विध्यात संक्रमण और अधःप्रवृत्त संक्रमण होता है ॥208॥

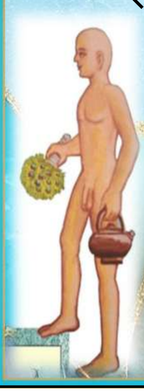

संभव संक्रमण

चारित्र मोह का उपशमन करने वाले के दर्शन मोह का उपशमन होता है या क्षपणा होती है ।

अर्थात् उपशम श्रेणी पर आरोहण या तो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि करता है या क्षायिक सम्यग्दृष्टि करता है ।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय विध्यात संक्रमण योग्य प्रकृतियों का विध्यात और अध:प्रवृत्त संक्रमण योग्य प्रकृतियों का अध:प्रवृत्त संक्रमण होता है।

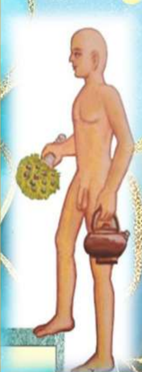

परन्तु गुण संक्रमण नहीं होता है ।

पंचभागहार संक्रमण

जिन भागहार के द्वारा

शुभ-अशुभकर्म

जीव के परिणामों के वश से

अन्य प्रकृतिरूप होते हैं,

वे भागहार पाँच प्रकार के हैं ।

उन्हें ही पंच भागहार कहा जाता है ।

पाँच संक्रमण

	भागहार छोटा होता जाता है-
उद्वेलन	सू/∂
विध्यात	सू/∂∂
अधःप्रवृत्त	छे./∂
गुणसंक्रमण	छे./∂∂
सर्वसंक्रमण	1

ainKosh.org

उद्वेलन संक्रमण

- अध:प्रवृत्त आदि करणरूप परिणामों के बिना ही कर्म प्रकृति के परमाणुओं का अन्य प्रकृतिरूप परिणमना उद्वेलन संक्रमण है । इसमें प्रकृति की लगातार उद्वेलना होती रहे, तो वह प्रकृति पूर्णरूप से सत्त्व में से चली जाती है । जैसे सम्यक्त्व प्रकृति ।

विध्यात संक्रमण

- मंद विशुद्धता वाले जीव के कांडक या गुणश्रेणि आदि परिणामों के होने के बाद जो संक्रमण होता है, वह विध्यात संक्रमण है ।

www.JainKosh.org

अध:प्रवृत्त संक्रमण —

- बंधरूप प्रकृति का अन्य बंधरूप प्रकृति में संक्रमित होना अध:प्रवृत्त संक्रमण कहलाता है । जैसे मतिज्ञानावरण ।

गुण संक्रमण —

- जहाँ असंख्यात गुणा - असंख्यात गुणा परमाणु प्रत्येक समय में संक्रमित होते हैं, उसे गुण संक्रमण कहते हैं ।

सर्व संक्रमण —

- अंतिम कांडक की अंत की फालि में अवशेष सर्व प्रदेशों को संक्रमित करना, उसे सर्व संक्रमण कहते हैं । इसके पश्चात् उस प्रकृति का सत्त्व शेष नहीं रहता ।

www.JainKosh.org

ठिदिसत्तमपुव्वदुगे, संखगुणूणं तु पढमदो चरिमं । उवसामण अणियट्टीसंखाभागासु तीदासु ॥209॥

- अन्वयार्थ - (अपुव्वदुगे) अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण में (पढमदो) प्रथम समय के स्थिति-सत्त्व से (चरिमं ठिदिसत्तं) अंतिम समय का स्थिति-सत्त्व (संखगुणूणं) संख्यातगुणा कम होता है।
- (अणियट्टीसंखाभागासु तीदासु) अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभागकाल व्यतीत होने पर (उवसामण) दर्शन-मोहनीय का उपशमन कार्य शुरु होता है ॥209॥

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अपूर्वकरण आदि में सत्त्व

अपूर्वकरण के प्रारंभ के स्थिति-सत्त्व से अंत में स्थिति-सत्त्व संख्यातगुणा हीन हो जाता है ।

इसी प्रकार अनिवृत्तिकरण के प्रारंभ के स्थिति-सत्त्व से अंत में स्थिति-सत्त्व संख्यात गुणाहीन हो जाता है ।

इस प्रकार हजारों कांडकों के होने पर अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग काल बीत जाता है ।

सम्मस्स असंखेज्जा, समयपबद्धाणुदीरणा होदि । तत्तो मुहुत्तअंते, दंसणमोहंतरं कुणइ ॥210॥

- अन्वयार्थ- (सम्मस्स) सम्यक्त्व प्रकृति के (असंखेज्जा समयपबद्धाणुदीरणा) असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा (होदि) होती है।
- (तत्तो) उसके बाद (मुहुत्तअंते) अंतर्मुहूर्त में (दंसणमोहंतरं) दर्शन-मोहनीय का अन्तर (कुणइ) करता है ॥210॥

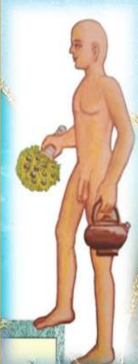

असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा

अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग काल बीतने पर सम्यक्त्व प्रकृति के असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा प्रारंभ हो जाती है ।

अभी तक जो अपकृष्ट द्रव्य लिया जा रहा था, उसमें असंख्यात बहुभाग द्रव्य उपरितन स्थिति में दिया जा रहा था ।

एक असंख्यात भाग में असंख्यात लोक का भाग देकर लब्ध एकभाग उदयावली में, शेष बहुभाग गुणश्रेणी में देते थे ।

इससे समयप्रबद्ध का एक असंख्यातवां भाग ही उदीरित होता था ।

असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा

यहाँ से उदयावली में द्रव्य देने का भागहार असंख्यात लोक के स्थान पर $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$ हो जाता है । भागहार घटने से लब्ध संख्या बहुत बड़ी प्राप्त होती है, जो असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण है । इसलिए यहाँ से असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है ।

यह परिवर्तन मात्र सम्यक्त्व प्रकृति में ही होता है । शेष कर्मों की उदीरणा अभी भी पूर्ववत् ही होती है ।

इसके आगे अंतर्मुहूर्त बीत जाने पर दर्शन मोह का अंतर करता है ।

असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा

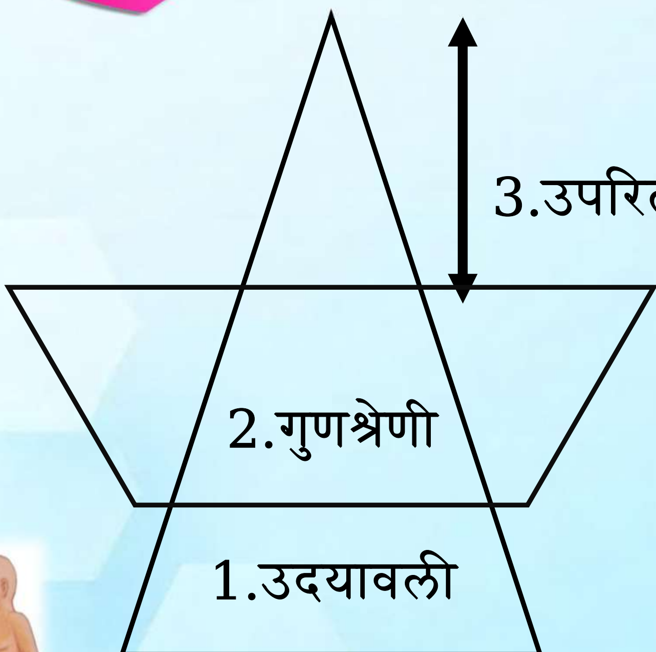

अपकृष्ट द्रव्य का बहुभाग द्रव्य, उपरितन स्थिति में

$$\frac{\text{अपकृष्ट द्रव्य}}{\frac{\text{प}}{\partial}} \times \frac{(\equiv\partial-1)}{\equiv\partial}$$ बहुभाग

$$\frac{\text{अपकृष्ट द्रव्य}}{\frac{\text{प}}{\partial} \times \equiv\partial}$$ एक भाग

अपकृष्ट द्रव्य का एक भाग

इसकी जगह भागहार $\frac{\text{प}}{\partial}$ है ।

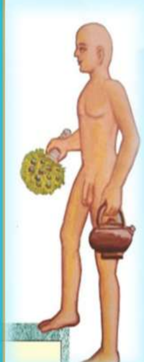

अंतोमुहुत्तमेत्तं, आवलिमेत्तं च सम्मतियठाणं ।
मोत्तूण य पढमठिदिं, दंसणमोहंतरं कुणइ ॥211॥

- अन्वयार्थ- (सम्मतियठाणं) सम्यक्त्वत्रय स्थान की (अंतोमुहुत्तमेत्तं च आवलिमेत्तं) अंतर्मुहूर्तमात्र और आवलिमात्र (पढमठिदिं) प्रथम स्थिति (मोत्तूण य) छोड़कर (दंसणमोहंतरं) दर्शनमोह का अंतर (कुणइ) करता है अर्थात् सम्यक्त्व प्रकृति की अंतर्मुहूर्तप्रमाण और मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व की आवलिप्रमाण प्रथम स्थिति छोड़कर ऊपर की स्थिति का अन्तर करता है ॥211॥

www.JainKosh.org

अंतरकरण

परिणाम विशेष के द्वारा

विवक्षित कर्मों की

नीचे और ऊपर की स्थितियों को छोड़कर

मध्य की अंतर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति के निषेकों के

अभाव करने को

अंतरकरण कहते हैं ।

नोट – यह अंतरकरण की क्रिया मात्र मोहनीय कर्म में ही संभव है, अन्य कर्मों में नहीं ।

अंतरकरण

द्वितीय स्थिति

- अंतरायाम से ऊपर के निषेकों का नाम द्वितीय स्थिति है।

अंतरायाम

- अंतर के अंतर्मुहूर्त प्रमाण आयाम को अंतरायाम कहते हैं ।

प्रथम स्थिति

- यहाँ जिन निषेकों का अभाव किया उनसे नीचे की स्थिति का नाम प्रथम स्थिति है ।

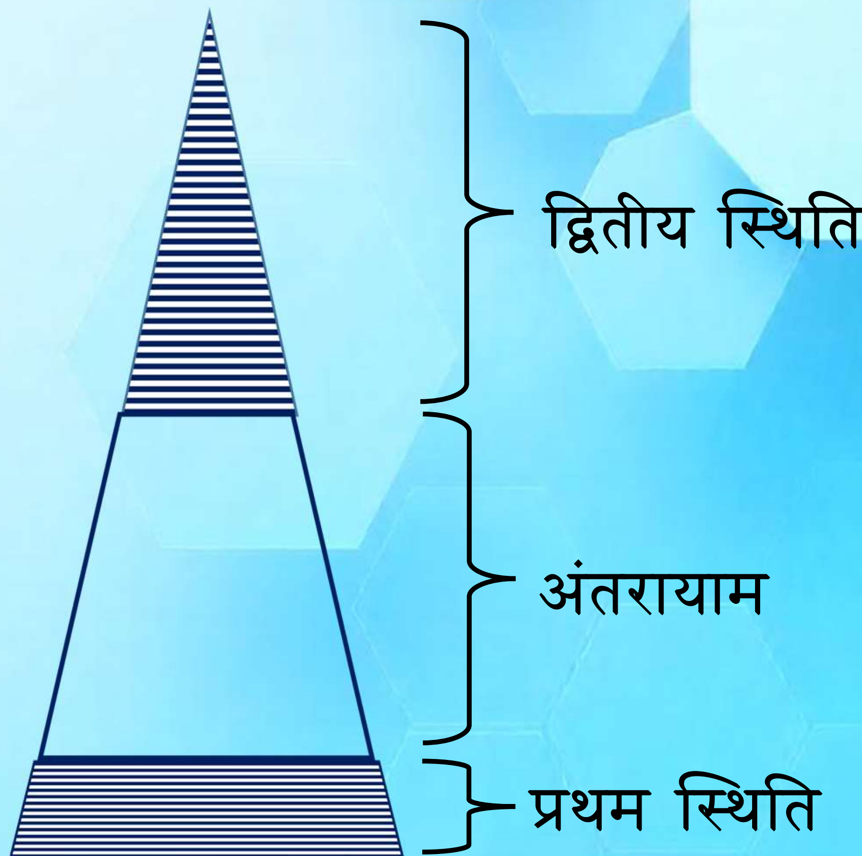

प्रथम स्थिति और अंतर का आयाम

यहाँ दर्शनमोह की तीनों प्रकृतियाँ सत्त्व में होती हैं । अत: तीनों प्रकृतियों का अंतर किया जाता है ।

उदयवान सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्त प्रमाण और अनुदय वाली मिथ्यात्व और मिश्र प्रकृति की प्रथम स्थिति आवली प्रमाण स्थापित करता है ।

प्रथम स्थिति के ऊपर अंतर्मुहूर्त प्रमाण स्थितियों का अंतर करता है ।

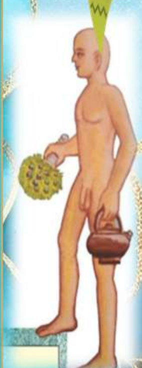

मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति के अंतरायाम का प्रमाण

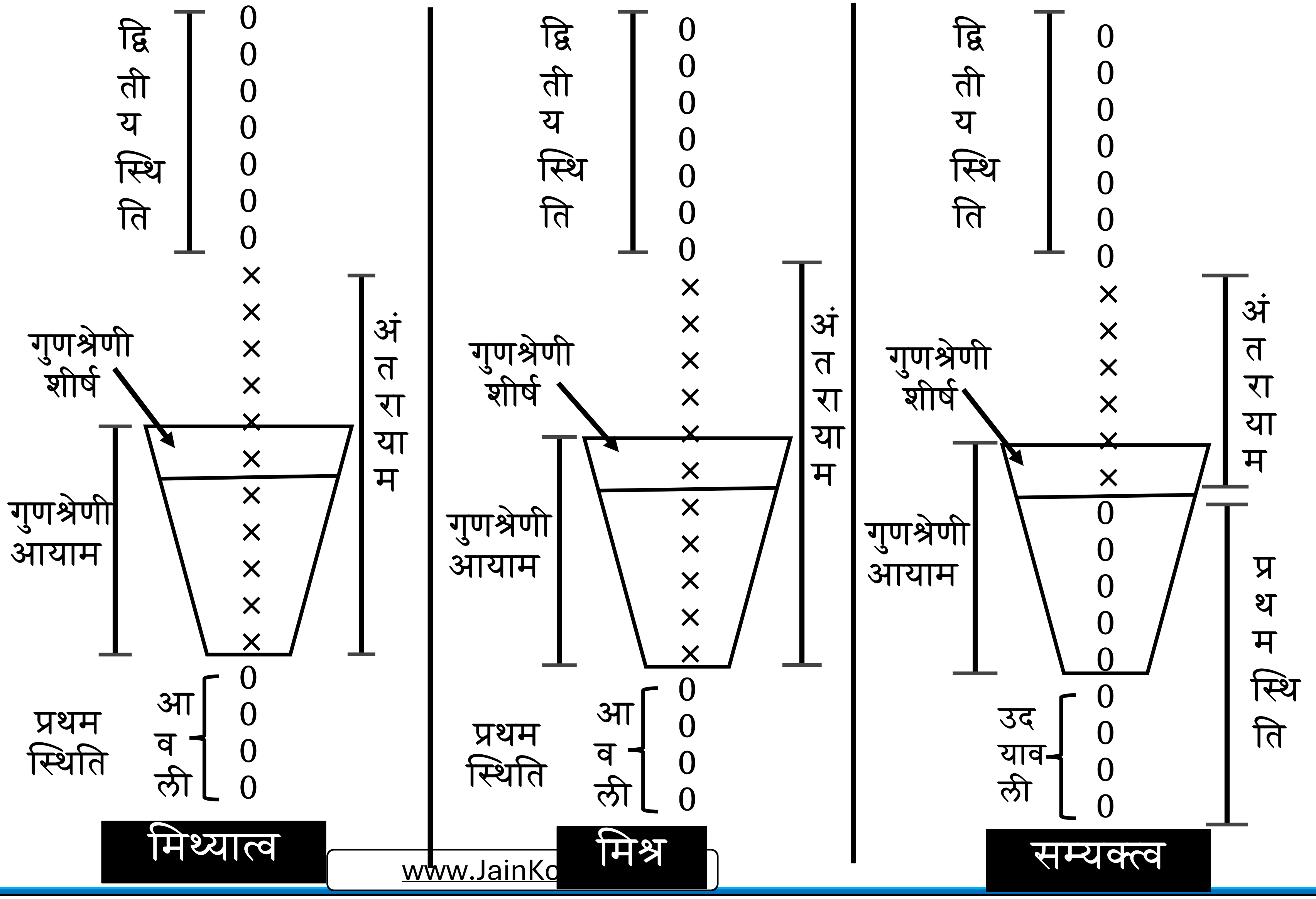

www.JainKo

द्वितीयोपशम हेतु अंतरकरण

यहाँ तीनों प्रकृति का द्वितीय स्थिति का प्रथम निषेक सदृश है । नीचे प्रथम स्थिति का अंतिम निषेक विसदृश है ।

सम्यक्त्व प्रकृति का गुणश्रेणी शीर्ष एवं उससे संख्यात गुणी उपरितन स्थिति का अंतर करता है ।

मिथ्यात्व और मिश्र प्रकृति का सर्व शेष गुणश्रेणी आयाम और उससे संख्यात गुणी उपरितन स्थिति का अंतर करता है ।

यह अंतरकरण एक अंतर्मुहूर्त काल में पूरा हो जाता है ।

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदिम्मि संछुहदि दंसणतियाणं ।
उक्कीरयं तु दव्वं, बंधाभावादु मिच्छस्स ॥212॥

- अन्वयार्थ- (दंसणतियाणं) दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों का (उक्कीरयं दव्वं) उत्कीरण द्रव्य (सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदिम्मि) सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में (संछुहदि) देता है।
- (तु) परन्तु (मिच्छस्स) मिथ्यात्व के (बंधाभावादु) बंध का अभाव होने से (द्वितीय स्थिति में द्रव्य नहीं देता) ॥212॥

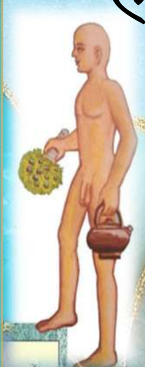

अंतरायाम के द्रव्य का निक्षेपण

दर्शनमोह की तीनों प्रकृतियों के अंतरायाम के द्रव्य का निक्षेपण सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में ही किया जाता है ।

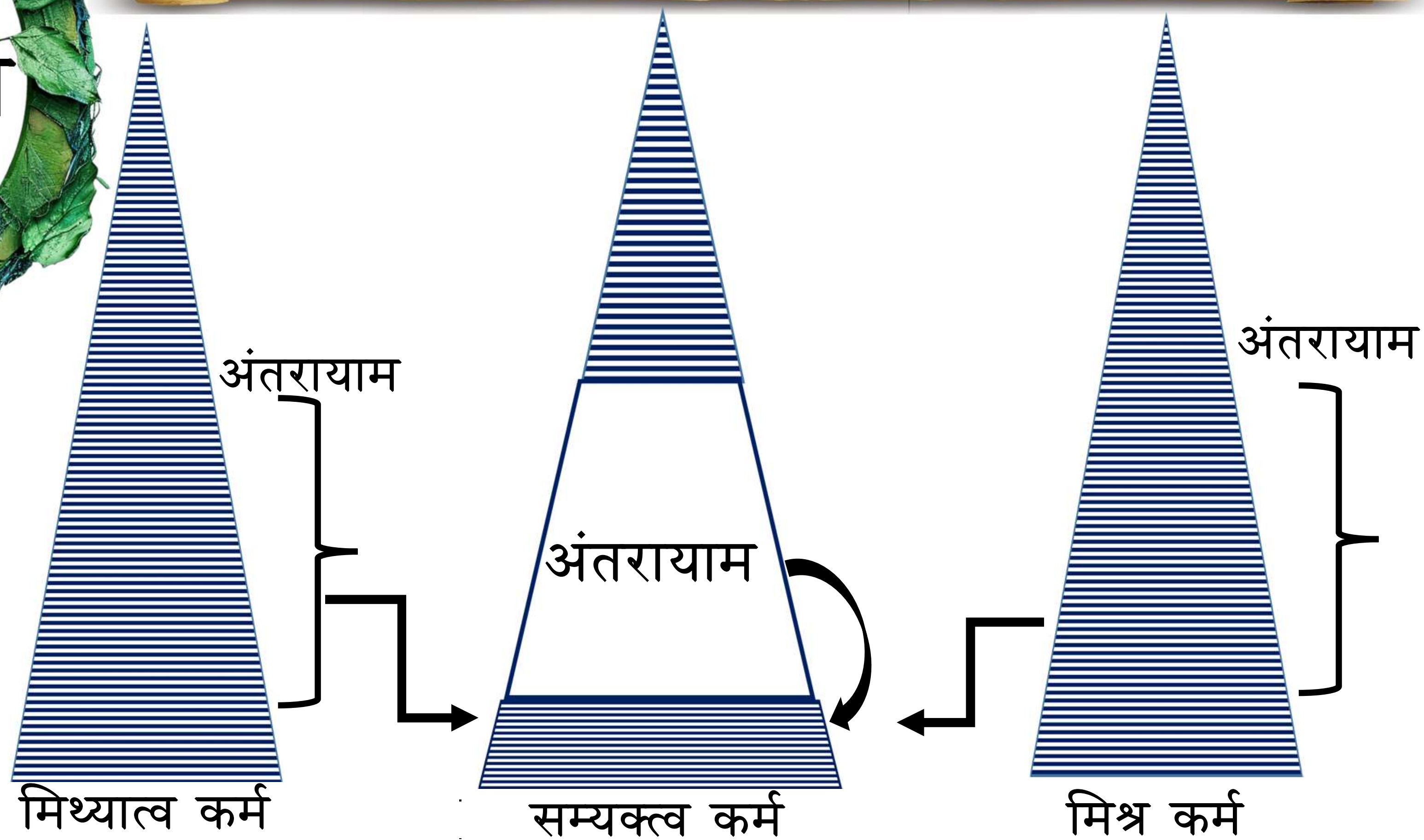

प्रश्न- अपनी-अपनी प्रथम स्थिति में निक्षेपण क्यों नहीं करते ?

उत्तर- मिथ्यात्व और मिश्र प्रकृति की प्रथम स्थिति एक आवली मात्र है, जो उदयावलीरूप है ।

इन दोनों प्रकृतियों का उदय नहीं होने से इनकी आवली प्रमाण प्रथम स्थिति में द्रव्य दिया नहीं जा सकता ।

अतः सम्यक्त्व प्रकृति की ही प्रथम स्थिति में द्रव्य संक्रमित करके दिया जाता है ।

प्रश्न- जैसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अंतरकरण में द्रव्य द्वितीय स्थिति में भी दिया था, वैसा यहाँ क्यों नहीं करते ?

उत्तर- प्रथमोपशम सम्यक्त्व के लिए हुए अंतरकरण के समय जीव मिथ्यादृष्टि था, वहाँ मिथ्यात्व का बंध हो रहा था ।

बंध में उत्कर्षण संभव है । बंध के नहीं होने पर उत्कर्षण नहीं किया जा सकता ।

यहाँ द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के लिए हो रहे अंतरकरण में जीव पहले से ही सम्यग्दृष्टि है ।

यहाँ मिथ्यात्व का बंध ही नहीं हो रहा । जब बंध नहीं हो रहा, तो द्वितीय स्थिति में द्रव्य का उत्कर्षण कैसे हो सकता है ।

इसलिए मात्र प्रथम स्थिति में ही अपकर्षण के द्वारा द्रव्य दिया जाता है ।

बिदियट्ठिदिस्स दव्वं, ओक्कड्डिय देदि सम्मपढमम्मि ।
बिदियट्ठिदिम्हि तस्स, अणुक्कीरिज्जंतमाणम्हि ॥213॥

- अन्वयार्थ - (बिदियट्ठिदिस्स दव्वं) द्वितीय स्थिति का द्रव्य (ओक्कड्डिय) अपकर्षित करके (सम्मपढमम्मि) सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में और (तस्स) उसकी (अणुक्कीरिज्जंतमाणम्हि बिदियट्ठिदिम्हि) अनुत्कीर्यमाण द्वितीय स्थिति में अर्थात् अन्तरायाम छोड़कर ऊपर की द्वितीय स्थिति में (देदि) देता है ॥213॥

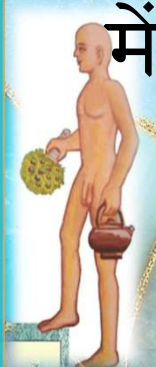

अपकृष्ट द्रव्य का निक्षेपण

अपकृष्ट द्रव्य

अंतरकरण करते हुए गुणश्रेणी निर्जरा भी चल रही है । उसके लिये भी द्वितीय स्थिति से द्रव्य अपकर्षित किया जाता है । इसे अपकृष्ट द्रव्य कहते हैं ।

इस अपकृष्ट द्रव्य का विभाग इस प्रकार होता है –

	मिथ्यात्व, मिश्र का अपकृष्ट द्रव्य	सम्यक्त्व का अपकृष्ट द्रव्य
बहुभाग	अपनी-अपनी द्वितीय स्थिति	अपनी द्वितीय स्थिति
एकभाग	सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति	अपनी प्रथम स्थिति

इस प्रकार प्रत्येक समय असंख्यात गुणा फाली द्रव्य और अपकृष्ट द्रव्य लेकर उपर्युक्त अनुसार द्रव्य का निक्षेपण किया जाता है ।

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदीसु सरिसाण मिच्छमिस्साणं । ठिदिदव्वं सम्मस्स य, सरिसणिसेयम्हि संकमदि ॥214॥

- अन्वयार्थ - (सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदीसु) सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में उसके (सरिसाण मिच्छमिस्साणं) समान मिथ्यात्व व मिश्र के (ठिदिदव्वं) स्थितिद्रव्य को (सम्मस्स य सरिसणिसेयम्हि) सम्यक्त्व प्रकृति के समान निषेक में (संकमदि) संक्रमित करता है ॥214॥

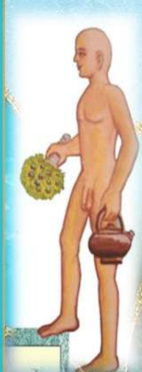

मिथ्यात्व और मिश्र का द्रव्य

जो सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति प्रमाण आयाम है, उतने आयाम तक के मिथ्यात्व और मिश्र के निषेकों का सम्यक्त्व प्रकृति की सदृश स्थिति में संक्रमण होता है ।

प्रथम स्थिति के ऊपर के निषेकों का उत्कीरण करके सम्यक्त्व प्रकृति की गुणश्रेणी और उदयावली में द्रव्य देता है ।

अंतरायाम में से उत्कीर्ण द्रव्य देने का विधान

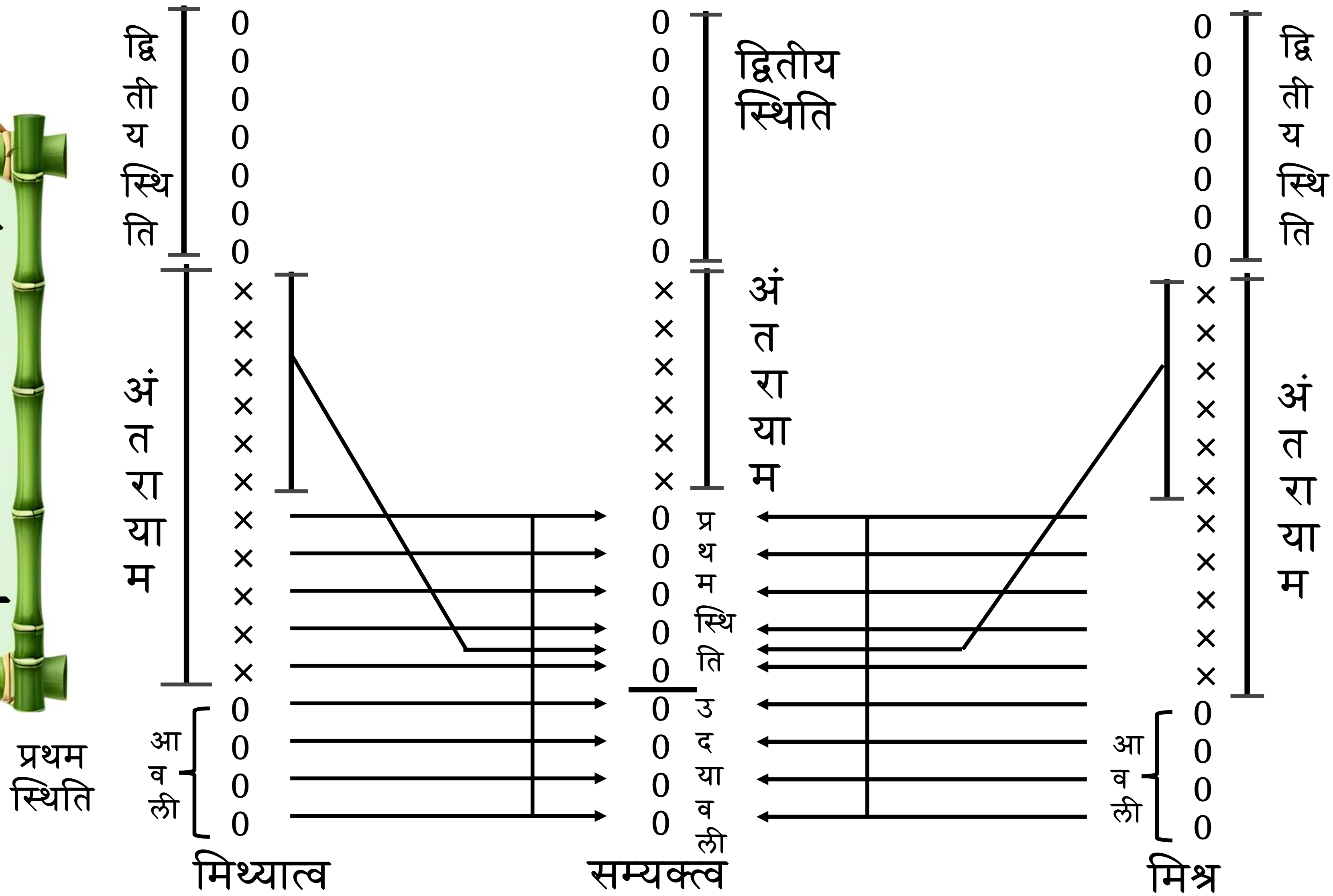

जावंतरस्स दुचरिमफालिं पावइ इमो कमो ताव ।
चरिमतिदंसणदव्वं, छुहेदि सम्मस्स पढमम्हि ॥215॥

- अन्वयार्थ- (जावंतरस्स) जब तक अन्तर की (दुचरिमफालिं पावइ) द्विचरमफालि प्राप्त होती है (ताव) तब तक (इमो कमो) यह क्रम है।
- (चरिमतिदंसणदव्वं) तीनों दर्शन-मोहनीय की अंतिम फालि का द्रव्य (सम्मस्स पढमम्हि) सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति में (छुहेदि) देता है ॥215॥

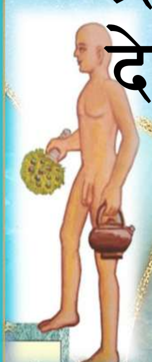

अंतरकरण की अंतिम फाली का द्रव्य

इस प्रकार अंतरकरण की द्विचरम फाली तक इसी क्रम से निक्षेपण होता है ।

चरम फाली के सर्व द्रव्य का निक्षेपण सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में ही होता है ।

इसी समय अपकृष्ट द्रव्य का निक्षेपण भी सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में ही होता है ।

जैसे पहले अपकृष्ट द्रव्य का निक्षेपण अपनी-अपनी द्वितीय स्थिति में होता था । वैसे चरम फाली के पतन के समय अपकृष्ट द्रव्य का निक्षेपण अपनी-अपनी स्व-स्थिति में नहीं होता, सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति में ही होता है ।

मिथ्यात्व और मिश्र की अंतर स्थिति का द्रव्य अपनी अंतर स्थिति में भी यथायोग्य जा रहा था । अंतिम फाली के पतन के समय वह अंतर स्थिति में ना जाकर मात्र सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति में ही जाता है ।

बिदियट्ठिदिस्स दव्वं, पढमट्ठिदिमेदि जाव आवलिया।
पडिआवलिया चिट्ठदि, सम्मत्तादिमठिदी ताव ॥216॥

- अन्वयार्थ - (जाव) जब तक (सम्मत्तादिमठिदि) सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति (आवलिया पडिआवलिया) आवली और प्रत्यावली प्रमाण (चिट्ठदि) शेष रहती है (ताव) तब तक (बिदियट्ठिदिस्स दव्वं) द्वितीय स्थिति का द्रव्य (पढमट्ठिदिमेदि) प्रथम स्थिति में आता है ॥216॥

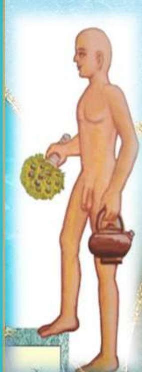

अंतरकरण के पश्चात् संभव कार्य

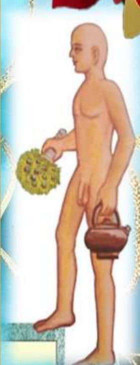

इस प्रकार अंतरकरण पूर्ण होता है ।

अंतरकरण के पश्चात् प्रत्येक समय में द्वितीय स्थिति में स्थित दर्शन मोहनीय के द्रव्य का उपशमन चलता है ।

सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति में दो आवली शेष रहने तक इसकी गुणश्रेणी चलती है ।

इसके पश्चात् गुणश्रेणी निक्षेपण बंद हो जाता है । मात्र द्वितीयावली से उदीरणा होती रहती है ।

प्रथम स्थिति में एक आवली शेष रहने पर उदीरणा भी बंद हो जाती है। मात्र उदयावली के निषेकों का अधोगलन होता है ।

प्रथम स्थिति में इतना काल शेष रहने पर संभव कार्य

काल शेष रहने पर	आगाल	गुणश्रेणी	उदीरणा	उपशम
2 आवली से अधिक रहने पर	✓	✓	✓	✓
2 आवली रहने पर	✕	✕	✓	✓
1 आवली + 1 समय रहने पर	✕	✕	✓	✓
1 आवली रहने पर	✕	✕	✕	✓
1 समय शेष रहने पर	✕	✕	✕	✓

आगाल

अपकर्षण के द्वारा द्वितीय स्थिति के द्रव्य का प्रथम स्थिति में दिया जाना आगाल कहलाता है ।

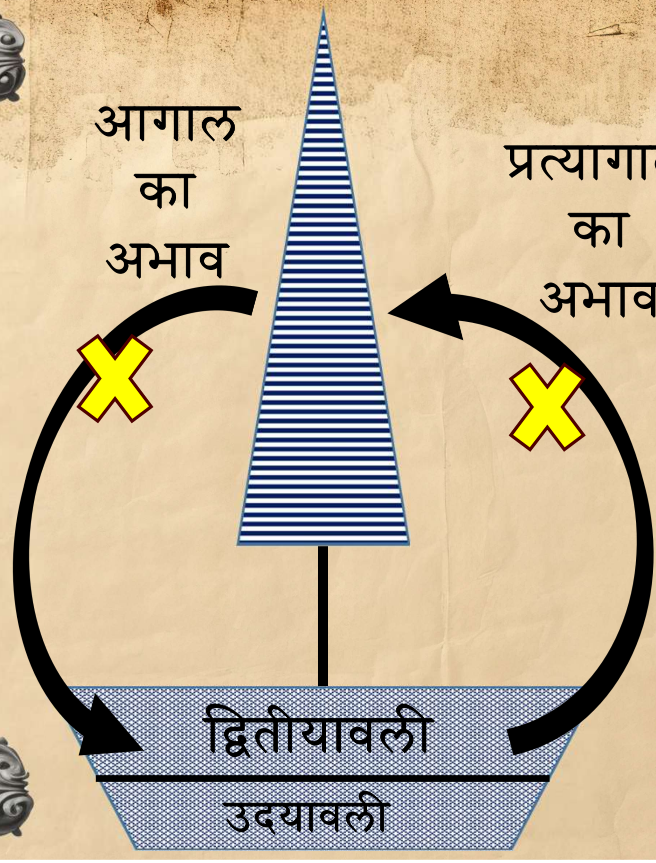

प्रत्यागाल

उत्कर्षण के द्वारा प्रथम स्थिति के द्रव्य का द्वितीय स्थिति में जाना प्रत्यागाल कहलाता है ।

अनिवृत्तिकरण में आगाल प्रत्येक समय चलता रहता है । बंध का अभाव होने से प्रत्यागाल पहले से नहीं हो रहा है ।

परंतु अंत में जब दो आवली मात्र काल शेष रहता है, तब यह क्रिया बंद हो जाती है ।

सम्मादिठिदिज्झीणे, मिच्छदव्वादु सम्मसम्मिस्से ।
गुणसंकमो ण णियमा, विज्झादो संकमो होदि ॥217॥

- अन्वयार्थ- (सम्मादिठिदिज्झीणे) सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति का क्षय होने पर (मिच्छदव्वादु) मिथ्यात्व के द्रव्य में से (सम्मसम्मिस्से) सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृति में (णियमा) नियम से (विज्झादो संकमो) विध्यात संक्रमण (होदि) होता है, (गुणसंकमो ण) गुणसंक्रमण नहीं होता ॥217॥

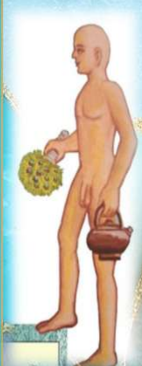

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति

इस प्रकार सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति के पूर्णरूप से गल जाने पर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है ।

इस सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व प्रकृति का गुणसंक्रमण नहीं होता, परंतु विध्यात संक्रमण होता है ।

विध्यात संक्रमण के द्वारा प्रतिसमय विशेषहीन क्रम से मिथ्यात्व का द्रव्य मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति में दिया जाता है ।

यहाँ स्थितिघात, अनुभागघात भी नहीं पाये जाते हैं ।

करण परिणाम-निमित्तक गुणश्रेणी भी नहीं होती, परंतु संयम-निमित्तक अवस्थित गुणश्रेणी प्रारंभ हो जाती है ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व की भांति यहाँ सम्यक्त्व प्राप्त होने पर गुण संक्रमण नहीं होता है ।

सम्मत्तुप्पत्तीए, गुणसंकमपूरणस्स कालादो ।
संखेज्जगुणं कालं, विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु ॥218॥

- अन्वयार्थ - (सम्मत्तुप्पत्तीए) प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में (गुणसंकमपूरणस्स कालादो) जो गुणसंक्रमण का पूरणकाल कहा है उससे (संखेज्जगुणं कालं) संख्यातगुणे काल तक (यह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव) (विसोहिवड्ढीहिं) विशुद्धि की वृद्धि से (वड्ढदि हु) बढ़ता है ॥218॥

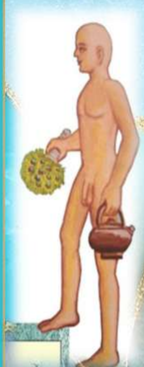

एकांतवृद्धि काल

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर यह जीव परिणामों की विशुद्धि में अंतर्मुहूर्त काल तक अनंत गुणा बढ़ता है । यह काल एकांतवृद्धि काल कहलाता है ।

यह एकांतवृद्धि काल प्रथमोपशम सम्यक्त्व के गुणसंक्रमण-पूरण काल से संख्यात गुणा काल है ।

तेण परं हायदि वा, वड्ढदि तदवट्ठिदो विसुद्धीहिं ।
उवसंतदंसणतियो, होदि पमत्तापमत्तेसु ॥219॥

- अन्वयार्थ- (उवसंतदंसणतियो) दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों का जिसने उपशमन किया है ऐसा द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव (तेण परं) उस एकान्तवृद्धि काल के बाद (विसुद्धीहिं) विशुद्धि से (हायदि) हीन होता है (वा) अथवा (वड्ढदि) बढ़ता है अथवा (तदवट्ठिदो) अवस्थित रहता है। (पमत्तापमत्तेसु) प्रमत्त व अप्रमत्त गुणस्थान में परावर्तित (होदि) होता है। (परावर्तन करता है) ॥219॥

विशुद्धि की हानि-वृद्धि

एकांतवृद्धि काल के पश्चात् यह जीव विशुद्धि से वर्धित होता है, अथवा संक्लेश के द्वारा विशुद्धि की हानि करता है, अथवा कितने ही काल तक हानि-वृद्धि के बिना अवस्थित रहता है ।

इस प्रकार संक्लेश-विशुद्धि के साथ अनेकों बार प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान में परावर्तन करता है ।

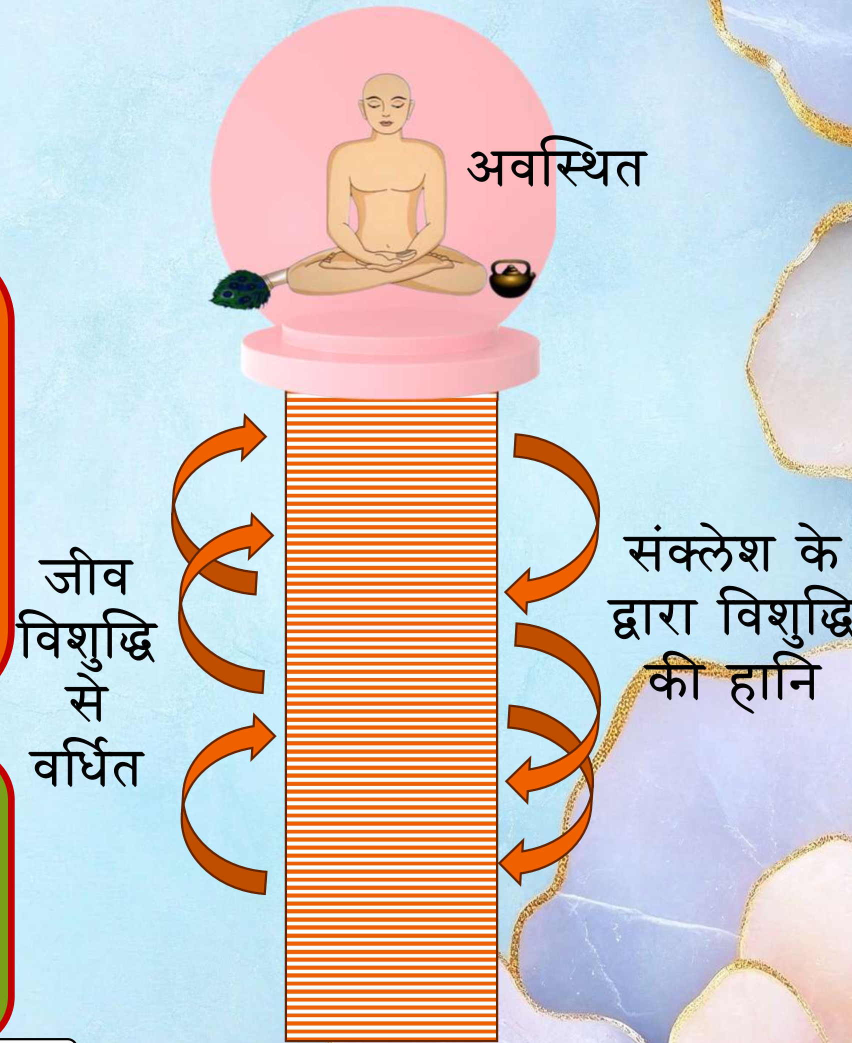

एवं पमत्तमियरपरावत्तिसहस्सयं तु कादूण ।
इगवीसमोहणीयं, उवसमदि ण अण्णपयडी हु ॥220॥

- अन्वयार्थ - (एवं) इस प्रकार (पमत्तमियरपरावत्तिसहस्सयं तु कादूण) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में हजारों परावर्तन करके
- (इगवीसमोहणीयं) मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का (उवसमदि) उपशम करता है, (ण अण्णपयडी हु) अन्य प्रकृतियों का उपशम नहीं करता है ॥220॥

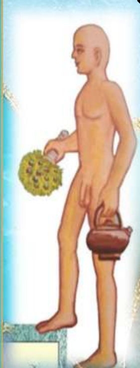

ऐसे द्वितीयोपशम
सम्यग्दृष्टि या क्षायिक
सम्यग्दृष्टि हजारों बार
प्रमत्त-अप्रमत्त होकर
मोहनीय की 21
प्रकृतियों
का उपशम करना
प्रारंभ करता है ।

अन्य किसी कर्म
की प्रकृतियों का
उपशम नहीं
करता
क्योंकि वे उपशम
के लिये अयोग्य
हैं ।

www.JainKosh.org

तिकरण बंधोसरणं, कमकरणं देसघादिकरणं च ।
अंतरकरणं उवसमकरणं उवसामणे होंति ॥221॥

- अन्वयार्थ- (उवसामणे) चारित्रमोह के उपशमन में (तिकरण) तीन करण, (बंधोसरणं) बंधापसरण, (कमकरणं) क्रमकरण, (देसघादिकरणं) देशघातिकरण, (अंतरकरणं) अंतरकरण (च) और (उवसमकरणं) उपशमकरण (होंति) होते हैं ॥221॥

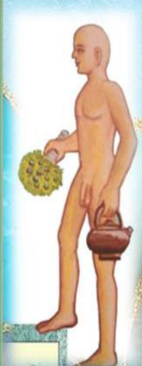

3 अनिवृत्ति करण
5 क्रमकरण
1 अधः प्रवृत्त करण
4 स्थिति बंधापसरण
6 देशघाति करण
7 अंतर करण
2 अपूर्व करण
8 उपशम करण
उपशम श्रेणी के 8 अधिकार
www.JainKosh.org

सातिशय अप्रमत्तसंयत - अधःप्रवृत्तकरण

इनमें से अध:प्रवृत्तकरण; सातिशय अप्रमत्तसंयत करता है ।

इसमें होने वाले कार्य, लक्षण वैसे ही हैं, जैसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अध:प्रवृत्तकरण के कहे हैं ।

यहाँ संयमी के योग्य बंध, उदय कहना चाहिए । अनंतानुबंधी-4, नरकायु, तिर्यंचायु के बिना प्रकृति-सत्त्व होता है ।

इस प्रकार अंतर्मुहूर्त काल में अध:प्रवृत्तकरण को समाप्त कर अपूर्वकरण में प्रवेश करता है। यह आठवां गुणस्थान कहलाता है ।

बिदियकरणादिसमये, उवसंततिदंसणे जहण्णेण । पल्लस्स संखभागं, उक्कस्सं सायरपुधत्तं ॥222॥

- अन्वयार्थ- (उवसंततिदंसणे) जिसने तीन दर्शनमोहनीय का उपशम किया है ऐसे द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि का (बिदियकरणादिसमये) द्वितीय करण याने अपूर्वकरण के प्रथम समय में (स्थितिकांडक) (जहण्णेण) जघन्य से (पल्लस्स संखभागं) पल्य का संख्यातवाँ भाग और (उक्कस्सं) उत्कृष्ट से (सायरपुधत्तं) सागरपृथक्त्व होता है ॥222॥

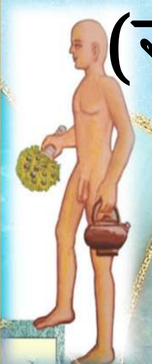

ठिदिखंडयं तु खइये, वरावरं पल्लसंखभागो दु ।
ठिदिबंधोसरणं पुण, वरावरं तत्तियं होदि ॥223॥

- अन्वयार्थ- (खइये) क्षायिक सम्यग्दृष्टि में (वरावरं) उत्कृष्ट व जघन्य (ठिदिखंडयं) स्थितिकांडक (पल्लसंखभागो दु) पल्य का संख्यातवाँ भाग है ।
- (पुण) पुनः (वरावरं) जघन्य व उत्कृष्ट (ठिदिबंधोसरणं) स्थितिबंधापसरण (तत्तियं) उतना ही अर्थात् पल्य का संख्यातवाँ भाग ही (होदि) होता है ॥223॥

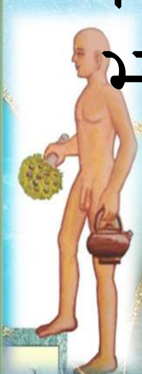

अपूर्वकरण में चार
आवश्यक प्रारंभ होते हैं
स्थिति कांडक घात
अनुभाग कांडक घात
गुणश्रेणी निर्जरा
गुण संक्रमण

स्थिति-कांडक का आयाम

सम्यक्त्वी	जघन्य	उत्कृष्ट
द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी	पल्य / संख्यात	सागर पृथक्त्व
क्षायिक सम्यक्त्वी	पल्य / संख्यात	पल्य / संख्यात (जघन्य से संख्यातगुणा)

प्रश्न- ऐसा अंतर क्यों होता है जबकि दोनों ही सम्यक्त्वी उपशमश्रेणी पर ही हैं ?

उत्तर- क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव ने दर्शन मोह की क्षपणा के दौरान स्थिति-सत्त्व को बहुत अधिक घाता था । जिसके फलस्वरूप स्थिति-सत्त्व अल्प होने से कांडक का आयाम अल्प होता है । इसलिए एक कांडक का अधिकतम आयाम भी $\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात}}$ से अधिक नहीं हो पाता ।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के स्थिति-सत्त्व का खंडन क्षायिक सम्यग्दृष्टि जैसा नहीं हुआ है । इसलिये उसके स्थिति-सत्त्व के अनुसार कांडक का आयाम सागर पृथक्त्व भी बन जाता है ।

ध्यान रखने योग्य

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि यद्यपि उपशम श्रेणी में परिणामों की विशुद्धि दोनों के समान हो, तदपि उनके कांडक के आयाम में उपर्युक्त प्रकार से अंतर हो सकता है ।

याने विशुद्धि के कारण से कांडक के आयाम में अंतर नहीं है, स्थिति-सत्त्व के कारण कांडक के आयाम में अंतर पड़ता है ।

प्रश्न- यद्यपि क्षायिक सम्यक्त्वी ने स्थिति-सत्त्व घटा लिया हो, पर बाद में अधिक बंध करके उसका सत्त्व बढ़ भी तो सकता है ?

उत्तर- किसी भी सम्यग्दृष्टि का स्थिति-बंध इतना नहीं होता कि वह स्थिति-सत्त्व को बढ़ा दे ।

याने सम्यग्दृष्टि स्थिति-बंध के द्वारा स्थिति-सत्त्व को बढ़ाता ही नहीं है ।

इसलिए क्षायिक सम्यग्दृष्टि को भी बंध के द्वारा सत्त्व अधिक नहीं होता ।

www.JainKosh.org

स्थितिबंधापसरण

अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय से ही स्थितिबंधापसरण चल रहा है ।
एक बंधापसरण का प्रमाण इतना होता है:

	जघन्य	उत्कृष्ट
द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि	पल्य / संख्यात	पल्य / संख्यात (जघन्य से संख्यात गुणा)

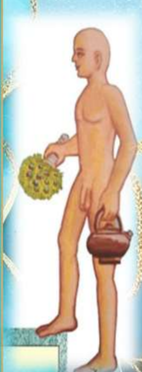

असुहाणं रसखंडणमणंतभागा ण खंडमियराणं । अंतोकोडाकोडी, सत्तं बंधं च तट्ठाणे ॥224॥

- अन्वयार्थ- (असुहाणं) अशुभ कर्मों का (अनंतभागा) अनन्त बहुभागप्रमाण (रसखंडणं) अनुभागकांडक होता है। (इयराणं खंडं ण) इतर अर्थात् शुभ प्रकृतियों का अनुभागकांडकघात नहीं होता है।
- (तट्ठाणे) उस स्थान में (अपूर्वकरण के प्रथम समय में) (सत्तं बंधं च) कर्मों का सत्त्व और कर्मों का बन्ध (अंतोकोडाकोडी) अंत:कोड़ाकोड़ी सागर होता है ॥224॥

अनुभाग-काण्डक-घात

अपूर्वकरण के प्रथम समय से ही अनुभागकांडकघात प्रारंभ हो जाता है ।

अनुभागकांडक के द्वारा असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियों का ही अनुभाग सत्त्व नष्ट होता है ।

विशुद्ध परिणामों के द्वारा साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग नहीं घाता जाता है ।

अनुभाग-घात अनंत बहुभाग का होता है । अर्थात् कुल अनुभाग-सत्त्व में अनंत का भाग लगाने पर प्राप्त एक भाग शेष रखा जाता है । बाकी बहुभाग प्रमाण अनुभाग का घात किया जाता है ।

www.JainKosh.org

अनुभाग-काण्डक-घात

एक अनुभागकांडक के बाद अगले अनुभागकांडक के द्वारा शेष अनंतवें अनुभाग का पुनः घात किया जाता है । शेष अनुभाग में अनंत का भाग लगाकर उपलब्ध अनंतवाँ भाग रखा जाता है, शेष बहुभाग को नष्ट किया जाता है ।

इसी प्रकार प्रत्येक अनुभागकांडक में बहुभाग को घाता जाता है एवं एक अनंतवाँ भाग शेष रखा जाता है ।

ऐसे अनुभागकांडकघात एक स्थितिकांडक के दौरान ही हजारों हो जाते हैं । ऐसे हजारों स्थितिकांडकों में हजारों-हजार अनुभागघात होते हैं ।

अनुभाग-काण्डक-घात

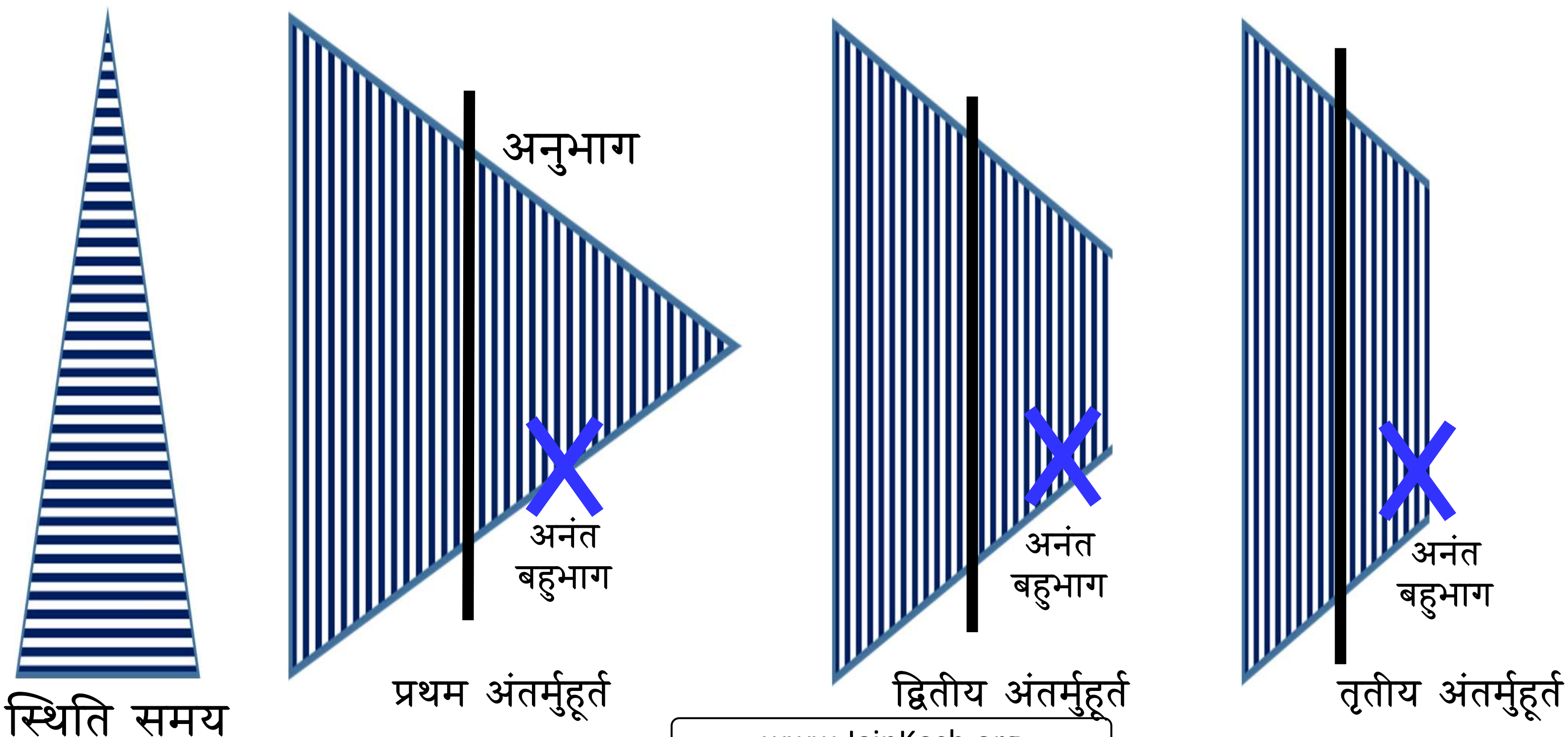
अनुभाग
अनंत बहुभाग
अनंत बहुभाग
अनंत बहुभाग
स्थिति समय
प्रथम अंतर्मुहूर्त
द्वितीय अंतर्मुहूर्त
तृतीय अंतर्मुहूर्त

अनुभाग संबंधी गुणहानियों का द्रव्य

- 7 कर्मों में से एक कर्म का सत्त्व द्रव्य = $\frac{\text{स}\,\partial\,\text{१२}\,-}{\text{७}}$
- प्रथम निषेक का द्रव्य = $\frac{\text{सर्व द्रव्य}}{\frac{\text{३}}{\text{२}}\text{गुणहानि}+}$ = $\frac{\text{स}\,\partial\,\text{१२}\,-}{\text{७।१२}\,+}$
- इस प्रथम निषेक के द्रव्य को अनुभाग की अनंत गुणहानियों में दिखाते हैं ।

समयप्रबद्ध का बँटवारा - उदाहरण

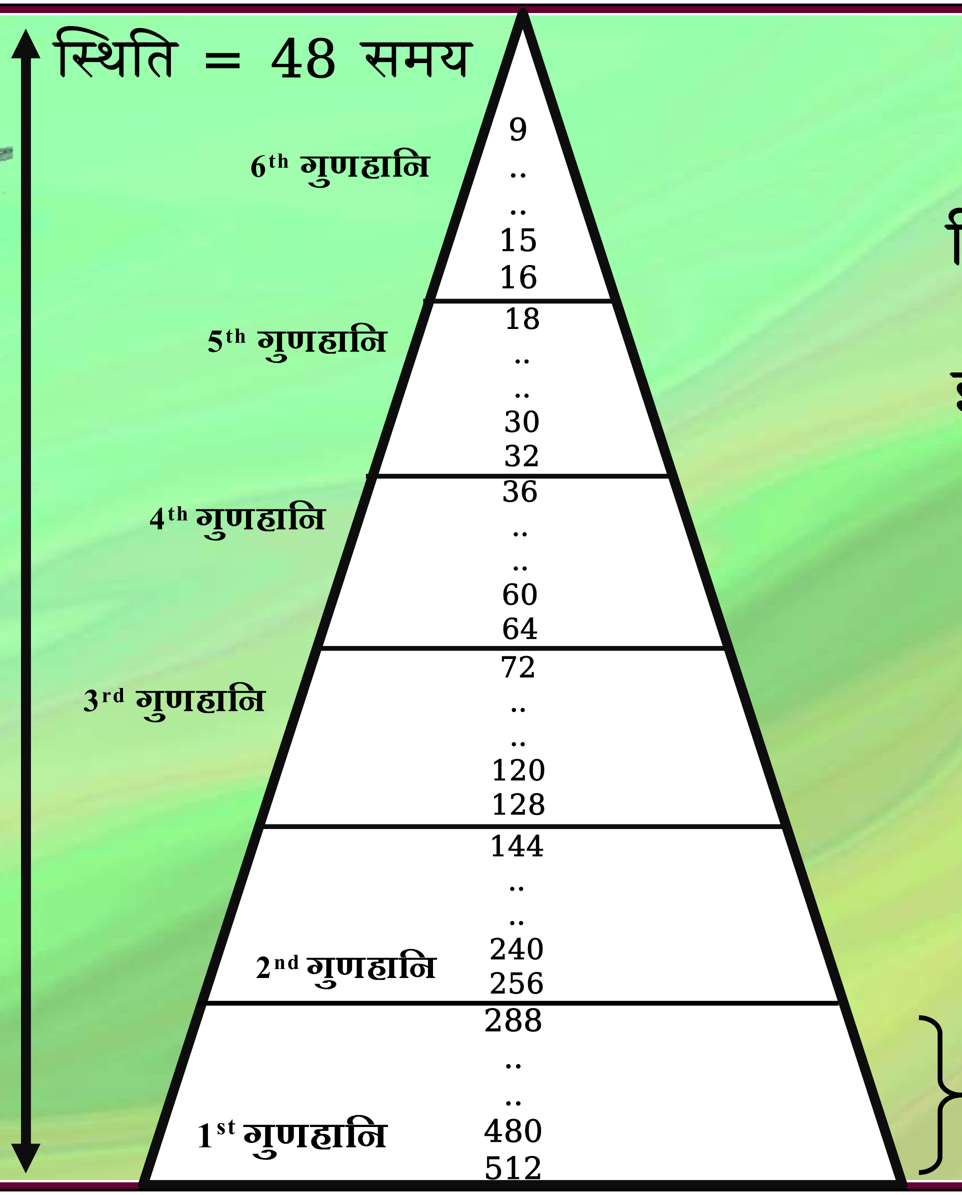

इस प्रकार प्रथम निषेक से अंतिम निषेक तक द्रव्य घटता हुआ जाता है । इसलिए नीचे से ऊपर तक घटता क्रम दिखाया जाता है ।

समयप्रबद्ध = 6300 परमाणु

नाना गुणहानि = 6

अनुभाग रचना

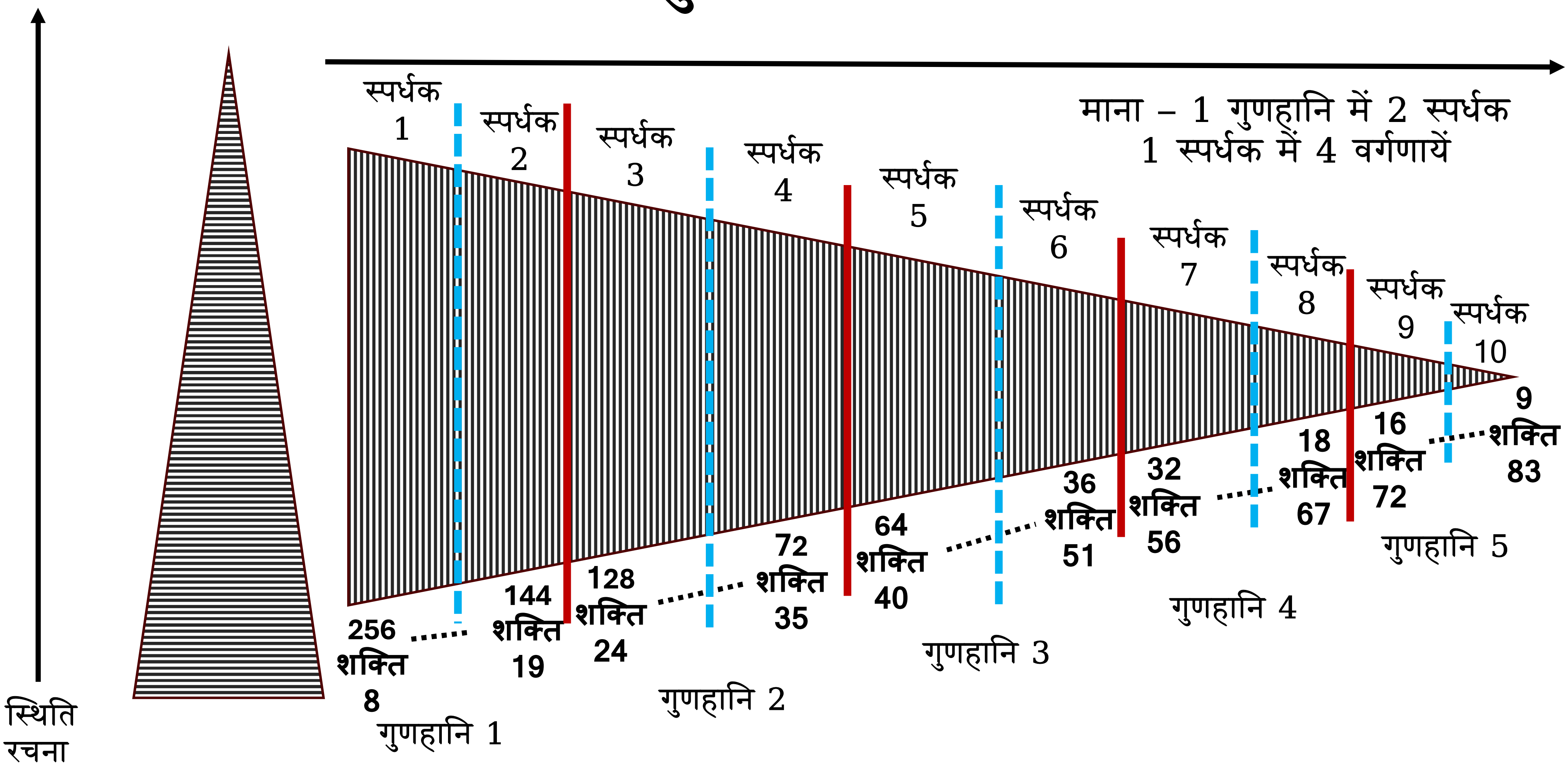

www.JainKosh.org

शेष गुणहानियाँ भी इसी प्रकार निकालना

1st गुणहानि	2nd गुणहानि	3rd गुणहानि	4th गुणहानि	5th गुणहानि	6th गुणहानि
288	144	72	36	18	9
320	160	80	40	20	10
352	176	88	44	22	11
384	192	96	48	24	12
416	208	104	52	26	13
448	224	112	56	28	14
480	240	120	60	30	15
512	256	128	64	32	16

पद	प्रमाण	संदृष्टि
अनुभाग की गुणहानियाँ	अनंत	ख
गुणहानि-आयाम	अनंत	गु
डेढ़ गुणहानि	अनंत	ख ३/२
अन्योन्याभ्यस्त राशि	अनंत	अ

प्रथम निषेक का द्रव्य, जिसे अनंत गुणहानियों में चयहीन क्रम से बांटना है

- स ∂ १२ –
  ७ | १२ +

अनुभाग में प्रथम वर्गणा का द्रव्य =

- सर्व द्रव्य / अनुभाग की डेढ़ गुणहानि +
- स ∂ १२ –
  ७ | १२ + | ख३/२ +

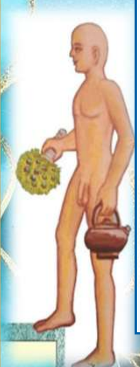

अंतिम वर्गणा का द्रव्य

- अगली-अगली गुणहानि का द्रव्य आधा-आधा होता है ।
- ऐसे करते हुये अंतिम गुणहानि की प्रथम वर्गणा का द्रव्य
- $= \dfrac{\text{प्रथम वर्गणा}}{2^{\text{नाना गुणहानि}-1}} = \dfrac{\text{प्रथम वर्गणा}}{\dfrac{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि}}{2}} = \dfrac{\text{स}\,\partial\,\text{१२}-}{\text{७।१२+।}\dfrac{\text{ख३}}{\text{२}}\text{+।}\dfrac{\text{अ}}{\text{२}}}$

- अंतिम गुणहानि की अंतिम वर्गणा = चय × (गुणहानि आयाम + 1)
- चय $= \dfrac{\text{प्रथम निषेक}}{2 \times \text{ गुणहानि}} = \dfrac{\text{स}\,\partial\,\text{१२}-}{\text{७।१२+।}\dfrac{\text{ख३}}{\text{२}}\text{+।}\dfrac{\text{अ}}{\text{२}}\text{।गु२}}$
- अंतिम वर्गणा $= \dfrac{\text{स}\,\partial\,\text{१२}-\text{।(गु+1)}}{\text{७।१२+।}\dfrac{\text{ख३}}{\text{२}}\text{+।}\dfrac{\text{अ}}{\text{२}}\text{।गु२}}$

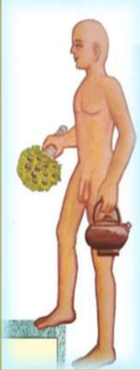

प्रथम निषेक का अनुभाग संबंधी द्रव्य

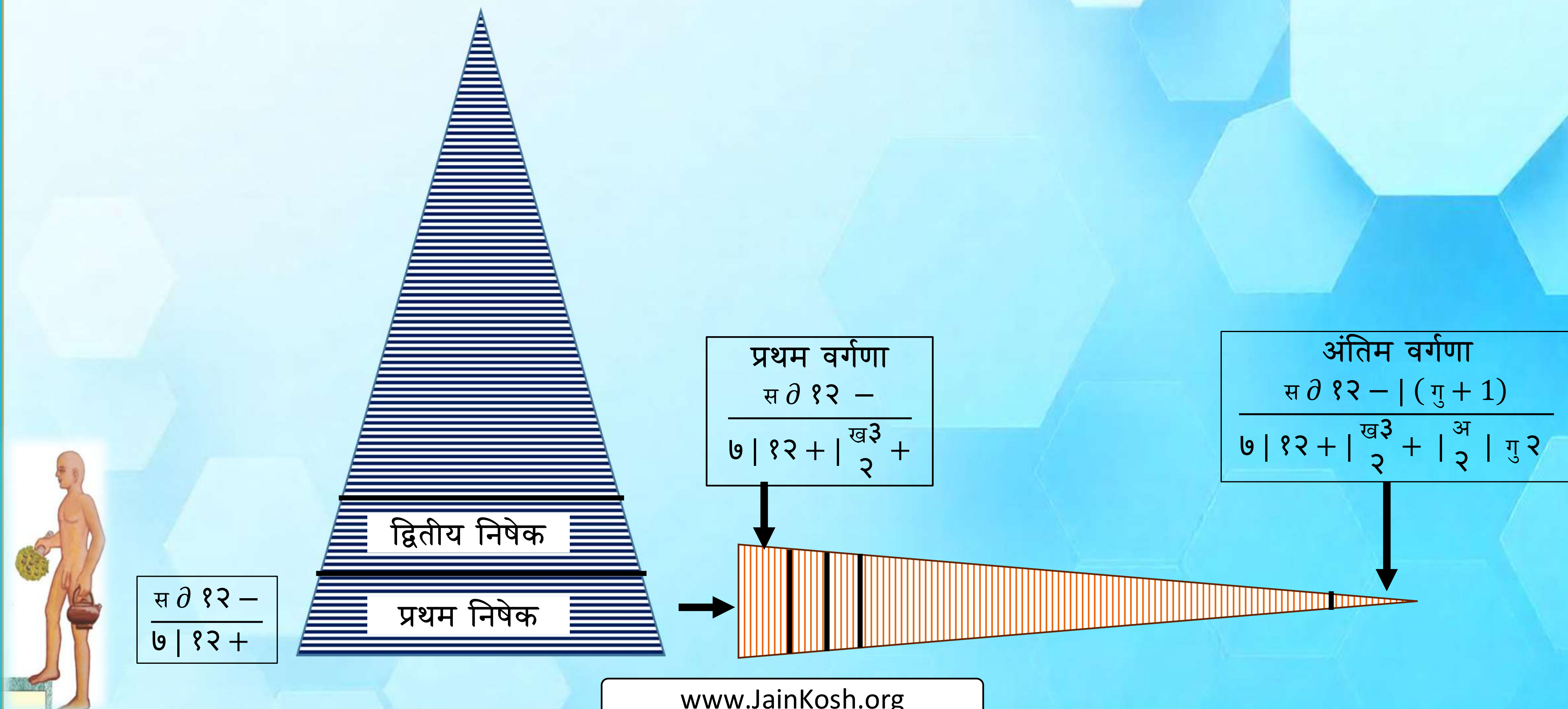

स्थिति संबंधी अंतिम निषेक का द्रव्य

- इसी प्रकार स्थिति के अंतिम निषेक के द्रव्य को अनुभाग की अनंत गुणहानियों में दिखाते हैं ।
- स्थिति संबंधी अंतिम गुणहानि का प्रथम निषेक
- $= \dfrac{\text{प्रथम निषेक}}{2^{\text{नाना गुणहानि}-1}} = \dfrac{\text{प्रथम निषेक}}{\dfrac{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि}}{2}} = \dfrac{\text{स}\,\partial\,\text{१२}-}{\text{७।१२+।}\dfrac{\text{प}}{\text{व}}2}$
- स्थिति संबंधी नाना गुणहानियाँ = पल्य के छेद – पल्य की वर्गशलाका के छेद
- इसकी अन्योन्याभ्यस्त राशि = $2^{\text{नाना गुणहानि}} = 2^{\text{पल्य के छेद}-\text{पल्य की वर्गशलाका के छेद}}$

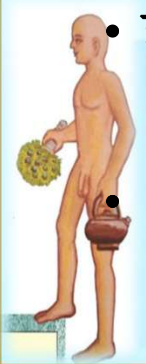

- $= \dfrac{2^{\text{पल्य के छेद}}}{2^{\text{पल्य की वर्गशलाका के छेद}}} = \dfrac{\text{पल्य}}{\text{पल्य की वर्गशलाका}} = \dfrac{\text{प}}{\text{व}}$

- अंतिम निषेक का द्रव्य = चय × (गुणहानि + 1)

- चय = $\dfrac{\text{गुणहानि का प्रथम निषेक}}{2\ \text{गुणहानि}} = \dfrac{\text{स}\,\partial\,\text{१२}-}{\text{७।१२+।}\frac{\text{प}}{\text{व}\,2}\text{। गु २}}$

- अंतिम निषेक = $\dfrac{\text{स}\,\partial\,\text{१२}-\ |\,(\text{गु}+1)}{\text{७।१२+।}\frac{\text{प}}{\text{व}\,2}\text{। गु २}}$

- भागहार के 2 का अपवर्तन किया । एक अधिक को गौण करके गुणकार में ‘गुणहानि’ का अपवर्तन किया । तब अंतिम

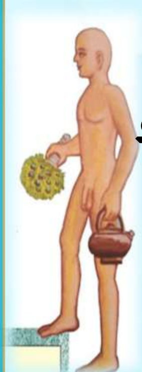

निषेक का द्रव्य = $\dfrac{\text{स}\,\partial\,\text{१२}\,-}{\text{७।१२}+|\frac{\text{प}}{\text{व}}}$

अंतिम निषेक का अनुभागसंबंधी द्रव्य

- इस अंतिम निषेक का बंटवारा अनुभाग संबंधी अनंत गुणहानियों में चयहीन क्रम से होता है । वहाँ प्रथम वर्गणा का द्रव्य = $\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\frac{३}{२}\text{गुणहानि}+}$ = $\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{ख}\frac{३}{२}+}$ = $\frac{\text{अंतिम निषेक}}{\text{ख}\frac{३}{२}+}$

- अंतिम गुणहानि की प्रथम वर्गणा = $\frac{\text{प्रथम वर्गणा}}{\frac{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि}}{२}}$ = $\frac{\text{अंतिम निषेक}}{\text{ख}\frac{३}{२}+|\frac{\text{अ}}{२}}$

- अंतिम गुणहानि की अंतिम वर्गणा = चय × (गुणहानि + 1)

- = $\frac{\text{अंतिम निषेक}}{\text{ख}\frac{३}{२}+|\frac{\text{अ}}{२}|\text{गु}\,२}$ × (गु + 1)

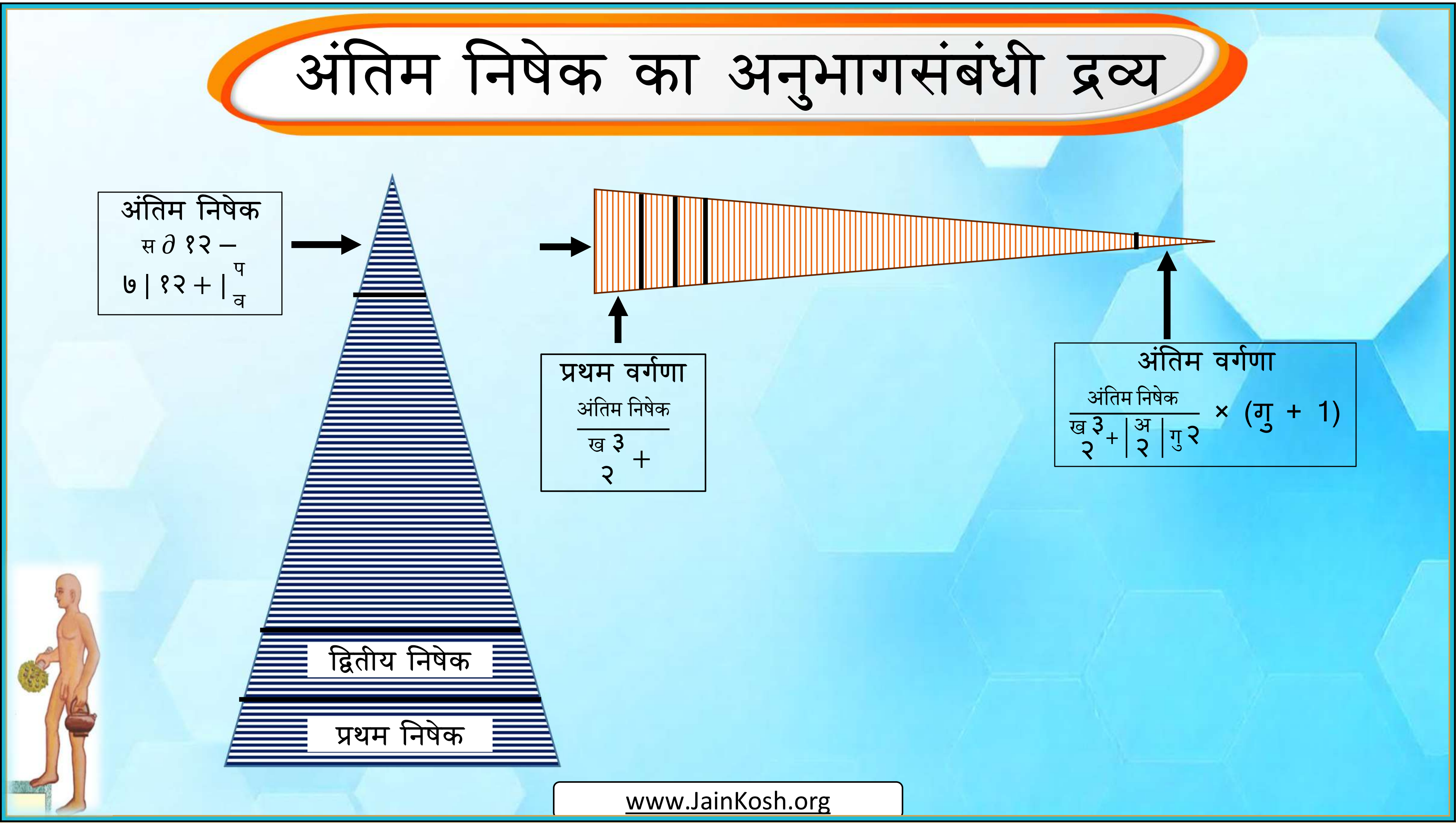

अंतिम निषेक का अनुभागसंबंधी द्रव्य
अंतिम निषेक
स ∂ १२ –
७ | १२ + | प व
प्रथम वर्गणा
अंतिम निषेक
ख ३ २ +
अंतिम वर्गणा
अंतिम निषेक
ख ३ २ + | अ २ | गु २
× (गु + 1)
द्वितीय निषेक
प्रथम निषेक
www.JainKosh.org

अंक संदृष्टि में – सर्व द्रव्य = 6300, गुणहानि = 8

- प्रथम निषेक = $\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\frac{3}{2}\text{ गुण} +} = \frac{6300}{8 \times \frac{3}{2} +}$ = 512
- अंतिम निषेक = $\frac{\text{प्रथम निषेक}}{\frac{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि}}{2}} = \frac{512}{\frac{64}{2}} = \frac{512}{32}$ = **16**
- यह अंतिम छठी गुणहानि के प्रथम निषेक का द्रव्य है ।
- अंतिम गुणहानि का चय = $\frac{\text{प्रथम निषेक}}{2\text{ गुणहानि}} = \frac{16}{2 \times 8}$ = **1**
- अंतिम गुणहानि का अंतिम निषेक = चय × (गुणहानि + 1)
- = 1 × (8 + 1) = 1 × 9 = 9

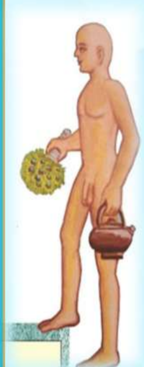

www.JainKosh.org

अनुभाग स्पर्धकों का निक्षेप आदि

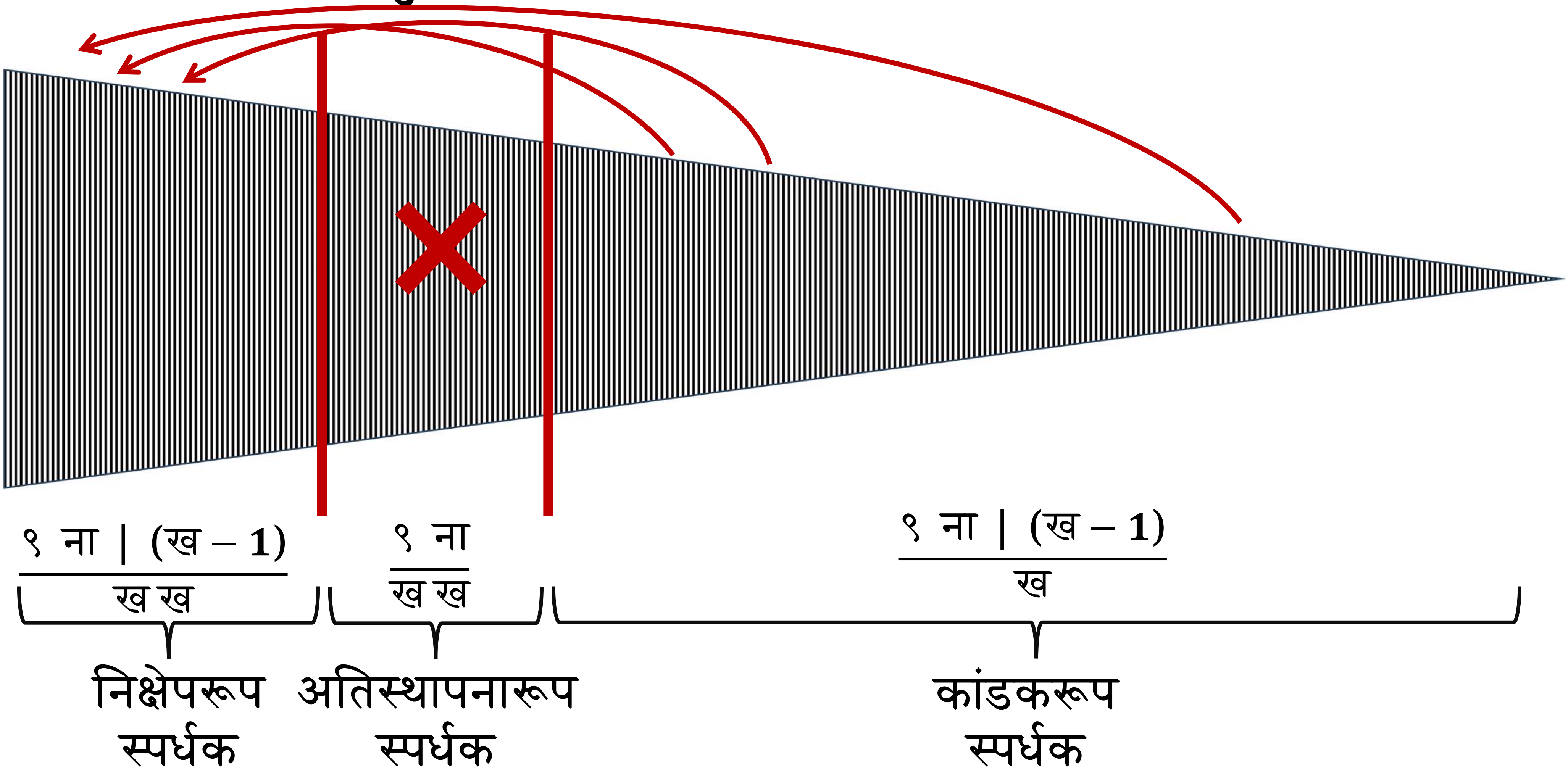

www.JainKosh.org

अपूर्वकरण के प्रारंभ में स्थिति-बंध, सत्त्व

स्थिति-बंध

प्रमाण → अंत:कोटाकोटी सागर

संदृष्टि → सा अं को २
४

स्थिति-सत्त्व

अंत:कोटाकोटी सागर

सा अं को २

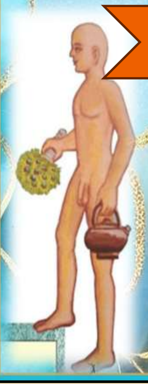

यहाँ बंध से सत्त्व संख्यात गुणा है ।

उदयावलिस्स बाहिं, गलिदवसेसा अपुव्वअणियट्टी । सुहुमद्धादो अहिया, गुणसेढी होदि तट्ठाणे ॥225॥

- अन्वयार्थ- (तट्ठाणे) उस स्थान में अर्थात् अपूर्वकरण के प्रथम समय में (उदयावलिस्स बाहिं) उदयावली के बाहर (अपुव्व अणियट्टी सुहुमद्धादो अहिया) अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसांपराय इन तीनों कालों से कुछ अधिक आयाम वाली (गलिदवसेसा) गलितावशेष (गुणसेढी) गुणश्रेणि (होदि) होती है ॥225॥

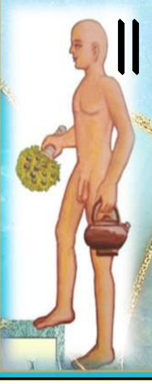

गुणश्रेणि निर्जरा

अपूर्वकरण के प्रथम समय से श्रेणी संबंधी गुणश्रेणी प्रारंभ हो जाती है ।

गुणश्रेणी का आयाम = अपूर्वकरण + अनिवृत्तिकरण + सूक्ष्म-सांपराय + $\frac{\text{उपशांत कषाय}}{\text{संख्यात}}$

यह उदयावली-बाह्य गलितावशेष गुणश्रेणी होती है ।

आयु को छोड़कर सत्त्व-स्थित सारे कर्मों की गुणश्रेणी होती है ।

प्रत्येक समय असंख्यात गुणा द्रव्य लेकर यथायोग्य उदयावली, गुणश्रेणी आयाम, उपरितन स्थिति में द्रव्य का विभाग होता है ।

गुणसंक्रमण

अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम समय से ही गुणसंक्रमण भी प्रारंभ हो जाता है ।

बंधती हुई प्रकृतियों का गुणसंक्रमण नहीं होता है ।

गुणसंक्रमण के योग्य जिन अप्रशस्त प्रकृतियों का बंध-व्युच्छेद होता जाता है, उनका अनंतर समय से गुणसंक्रमण होता है ।

इस प्रकार ये चारों कार्य अपूर्वकरण के द्वितीयादि समयों में भी होते हैं ।

यहाँ पर इन प्रकृतियों का गुणसंक्रमण होता है

- दर्शनावरण
  - स्त्यानगृद्धि-3
- असाता वेदनीय
- मोहनीय
  - 4 अप्रत्याख्यान, 4 प्रत्याख्यान, 2 वेद, अरति-शोक
- नीच गोत्र
- नाम (31)
  - नरक-2, तिर्यंच-2, 4 जाती, 5 संस्थान, 5 संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावर आदि 10 अप्रशस्त प्रकृतियाँ

पढमे छट्ठे चरिमे, बंधे दुग तीस चदुर वोच्छिण्णा ।
छण्णोकसायउदयो, अपुव्वचरिमम्हि वोच्छिण्णो ॥226॥

- अन्वयार्थ - (पढमे दुग) अपूर्वकरण के प्रथम भाग में दो प्रकृतियाँ, (छट्ठे तीस) छठे भाग में तीस प्रकृतियाँ, (चरिमे चदुर) अंतिम सातवें भाग में चार प्रकृतियाँ (बंधे वोच्छिण्णा) बंध से व्युच्छिन्न होती है।
- (अपुव्वचरिमम्हि) अपूर्वकरण के अंतिम समय में (छण्णोकसायउदयो) छह नोकषायों का उदय (वोच्छिण्णो) व्युच्छिन्न होता है ॥226॥

अपूर्वकरण गुणस्थान में बंध, उदय-व्युच्छित्ति

किस भाग का अंतिम समय	संख्या	प्रकृतियाँ
प्रथम भाग	2	निद्रा-प्रचला
छठा भाग	30	तीर्थंकर आदि 30
सातवां भाग	4	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा

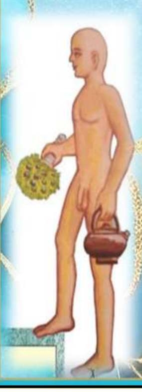

हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा – इन छः प्रकृतियों की उदय-व्युच्छित्ति अंतिम समय में होती है ।

अणियट्टिस्स य पढमे, अण्णट्ठिदिखंडपहुदिमारभइ।
उवसामणा णिधत्ती, णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा ॥227॥

- अन्वयार्थ - (अणियट्टिस्स य पढमे) अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में (अण्णठ्ठिदिखंडपहुदिं) अन्य स्थितिकांडक आदि का (आरभइ) प्रारम्भ करता है।
- (तत्थ) वहाँ (उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा) उपशामना, निधत्ति और निकाचना की (वोच्छिण्णा) व्युच्छित्ति हुई ॥227॥

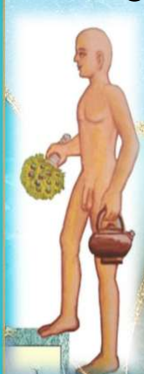

अनिवृत्तिकरण

इस प्रकार अंतर्मुहूर्त काल द्वारा अपूर्वकरण को बिताकर विशुद्ध जीव अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त करता है ।

अनिवृत्तिकरण में प्रवेश करने पर नवीन स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, स्थितिबंधापसरण प्रारंभ होते हैं ।

अपूर्वकरण के अंतिम समय में अप्रशस्त उपशामना, निधत्ति, निकाचितकरण की व्युच्छित्ति हो जाती है ।

अतः अनिवृत्तिकरण में प्रवेश करते ही सर्व अप्रशस्त उपशम, निधत्ति, निकाचित करण समाप्त हो जाते हैं ।

ध्यान रहे यहाँ प्रशस्त उपशामना का अभाव नहीं होता है । अन्यथा दर्शनमोह की भी उदीरणा का प्रसंग आयेगा । मात्र अप्रशस्त उपशामना ही नष्ट होती है ।

जिस कर्म परमाणु का
उदीरणा
उदीरणा, संक्रमण
उदीरणा, संक्रमण, अपकर्षण, उत्कर्षण
संभव ना हो, उसे कहते हैं –
उपशान्त
निधत्ति
निकाचना
एक ही निषेक के कर्म परमाणुओं में उपशांत, निधत्ति, निकाचना के परमाणु होते हैं ।
कुछ परमाणु उपशांत, कुछ निधत्ति, कुछ निकाचना रूप पाये जाते हैं ।

अंतोकोडाकोडी, अंतोकोडी य सत्त बंधं च ।
सत्तण्हं पयडीणं, अणियट्टीकरणपढमम्हि ॥228॥

- अन्वयार्थ- (अणियट्टीकरणपढमम्हि) अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में (सत्तण्हं पयडीणं) सात प्रकृतियों का (सत्त) सत्त्व (अंतोकोडाकोडी) अंतःकोटाकोटी सागर (य) और (बंधं) बन्ध (अंतोकोडी) अंत:कोटी सागर होता है ॥228॥

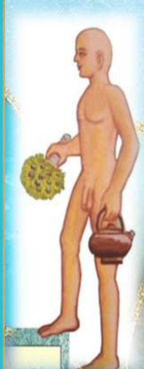

अनिवृत्तिकरण के प्रारंभ में स्थिति-बंध, सत्त्व

स्थिति-बंध	स्थिति-सत्त्व
प्रमाण: अंत:कोटी सागर	अंत:कोटाकोटी सागर
संदृष्टि: सा अं को	सा अं को २ ४

ठिदिबंधसहस्सगदे, संखेज्जा बादरे गदा भागा ।
तत्थ असण्णिस्स ठिदीसरिस ट्ठिदिबंधणं होदि ॥229॥

- अन्वयार्थ- (ठिदिबंधसहस्सगदे) हजारों स्थिति-बंध होने पर (बादरे) अनिवृत्तिकरण बादर गुणस्थान का (संखेज्जा भागा) संख्यात बहुभाग काल (गदा) बीत गया (तत्थ) वहाँ (असण्णिस्स ठिदीसरिस) असंज्ञी के स्थिति-बंध के समान (ट्ठिदिबंधणं) स्थिति-बंध (होदि) होता है ॥229॥

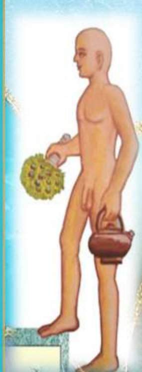

स्थितिबंधापसरण ।

अध:प्रवृत्तकरण से ही स्थितिबंधापसरण चल रहा है । वह यहाँ भी प्रवृत्त हो ही रहा है।

अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय से प्रत्येक अंतर्मुहूर्त में पल्य/संख्यात भाग प्रमाण स्थिति-बंध घटता है ।

अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग बीतने पर ऐसे हजारों स्थितिबंधापसरण होने पर स्थिति-बंध घटते हुए असंज्ञी के स्थिति-बंध जितना होने लगता है ।

असंज्ञी सदृश स्थिति-बंध

कर्म	स्थिति-बंध
नाम-गोत्र	1000 सागर $\times \frac{2}{7}$
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, साता वेदनीय	1000 सागर $\times \frac{3}{7}$
चारित्र मोहनीय	1000 सागर $\times \frac{4}{7}$

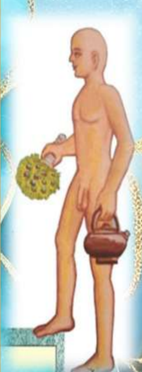

यह $\frac{2}{7}, \frac{3}{7}, \frac{4}{7}$ का विभाग आगे भी इसी प्रकार जानना ।

ठिदिबंधपुधत्तगदे, पत्तेयं चदुर तिय बियेइंदी ।
ठिदिबंधसमं होदि हु, ठिदिबंधमणुक्कमेणेव ॥230॥

- अन्वयार्थ- उसके पश्चात् (पत्तेयं) प्रत्येक स्थान में (ठिदिबंधपुधत्तगदे) पृथक्त्व (संख्यात हजार) स्थिति-बंध जाने पर (अणुक्कमेणेव) अनुक्रम से ही (चदुर) चतुरिन्द्रिय (तिय) त्रीन्द्रिय (बियेइंदि) द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रियों के (ठिदिबंधसमं) स्थिति-बंध के समान (होदि हु) (स्थिति-बंध) होता है ॥230॥

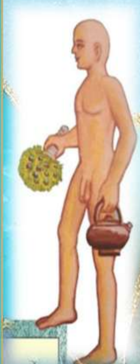

www.JainKosh.org

स्थितिबंधापसरण

अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग बीतने पर सातों कर्मों का स्थिति-बंध घट-घटकर क्रमशः इस प्रकार हो जाता है-

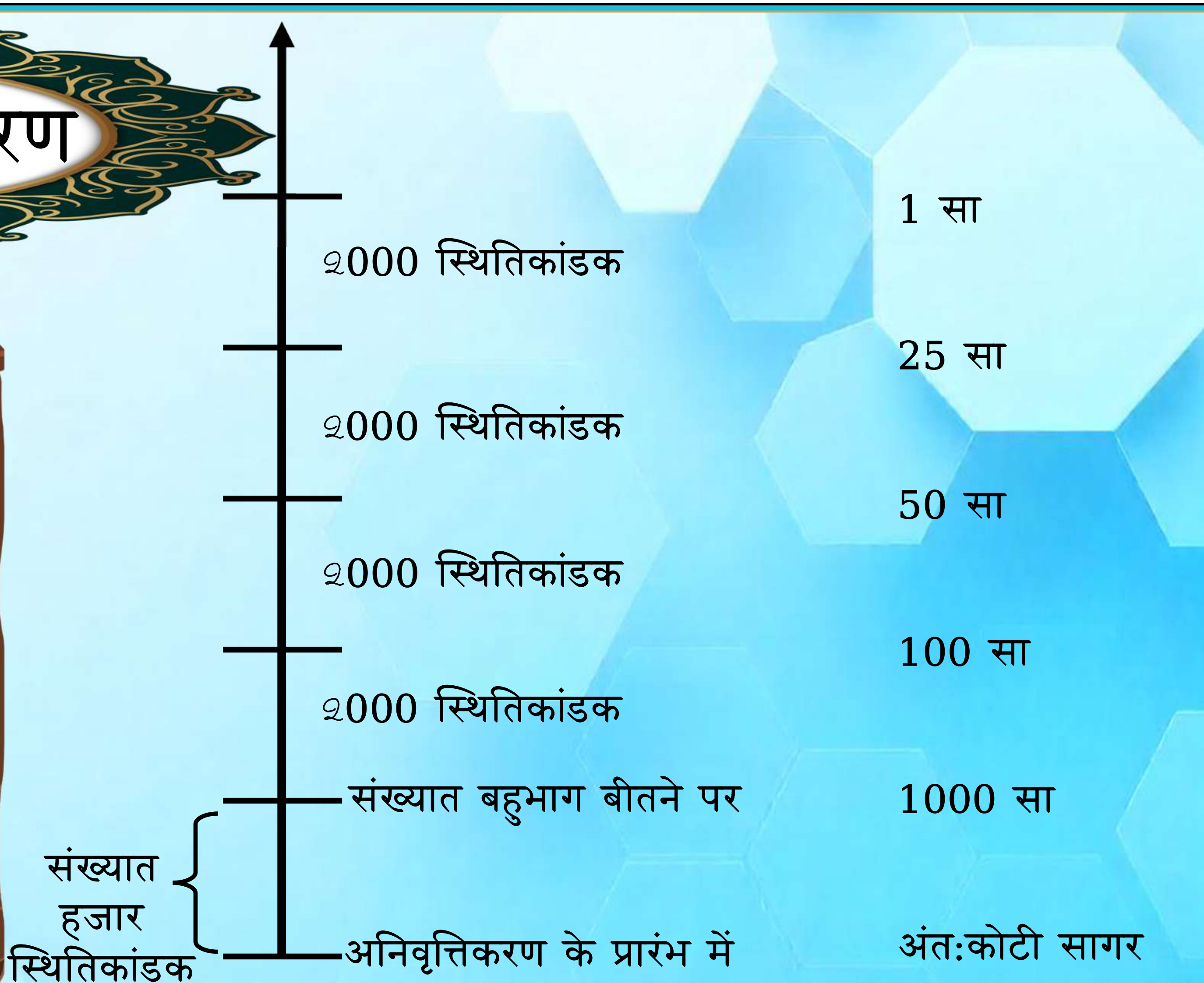

www.JainKosh.org

एइंदियट्ठिदीदो, संखसहस्से गदे दु ठिदिबंधे। पल्लेक्कदिवड्ढदुगे, ठिदिबंधो वीसियतियाणं ॥231॥

- अन्वयार्थ- (एइंदियट्ठिदीदो) एकेन्द्रिय समान स्थिति-बंध के आगे (संखसहस्से) संख्यात हजार (ठिदिबंधे) स्थिति-बंध (गदे दु) व्यतीत होने पर (वीसियतियाणं) वीसियत्रिक का अर्थात् वीसिय, तीसिय और चालीसिय का क्रम से (पल्लेक्कदिवड्ढदुगे) एक पल्य, डेढ़ पल्य और दो पल्य (ठिदिबंधो) स्थिति-बंध होता है। ॥231॥

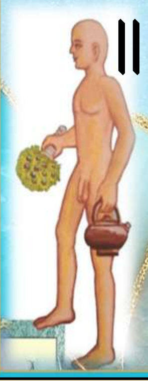

www.JainKosh.org

इसके आगे संख्यात हजारों स्थितिबंधापसरण होने पर एक पल्य प्रमाण बंध होता है ।

नाम-गोत्र

- 1 पल्य

तीसीय

- $\frac{3}{2}$ पल्य

चालीसीय

- 2 पल्य

ऐसा किस प्रकार आया ? उत्तर- कर्म के अनुपात अनुसार आया है ।

जैसे 20 कोड़ाकोड़ी सागर वाले कर्म का बंध = 1 पल्य

तो 40 कोड़ाकोड़ी सागर वाले कर्म का बंध = $\frac{1 \text{ पल्य}}{20 \text{ कोड़ाकोड़ी सागर}}$ × 40 कोड़ाकोड़ी सागर

= $\frac{1 \text{ पल्य}}{2}$ × 4 = 1 पल्य × 2 = 2 पल्य

इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना चाहिए ।

पल्लस्स संखभागं, संखगुणूणं असंखगुणहीणं ।
बंधोसरणं पल्लं, पल्लासंखं ति संखवस्सं ति ॥232॥

- अन्वयार्थ - (पल्लं) पल्यस्थिति पर्यन्त (पल्लस्स संखभागं) पल्य का संख्यातवाँ भाग (बंधोसरणं) बंधापसरण होता है ।
- (पल्लासंखं ति) पल्य का असंख्यातवाँ भाग स्थिति-बंध होने तक (संखगुणूणं) संख्यातगुणा हीन अर्थात् पल्य का संख्यात बहुभागप्रमाण बंधापसरण होता है।
- (संखवस्सं ति) संख्यातवर्ष स्थिति-बंध होने तक (असंखगुणहीणं) असंख्यातगुणा हीन बंधापसरण होता है ॥232॥

बंधस्थान में स्थितिबंधापसरण का प्रमाण

बंधस्थान	स्थिति-बंध	स्थितिबंधापसरण का प्रमाण
अंत:कोड़ाकोड़ी सागर से पल्य	संख्यात पल्य	$\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात}}$
पल्य से दूरापकृष्टि पर्यंत	$\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात}}$	बंध का संख्यात बहुभाग
दूरापकृष्टि से संख्यात वर्ष प्रमाण पर्यंत	$\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$	बंध का असंख्यात बहुभाग

एवं पल्ले जादे, बीसीया तीसिया य मोहो य ।
पल्लासंखं च कमे, बंधेण य वीसियतियाओ ॥233॥

- अन्वयार्थ - (एवं) इस प्रकार (पल्ले जादे) पल्यप्रमाण स्थिति-बंध होने पर (बीसिया तीसिया य मोहो य) वीसिय, तीसिय व मोह – ऐसा (बंधेण कमे) स्थिति-बंध की अपेक्षा से क्रम है (च)
- और (पल्लासंखं) पल्य का असंख्यातवाँ भाग स्थिति-बंध होने पर भी (वीसियतियाओ बंधेण कमे) वीसियत्रिक का बंध की अपेक्षा से यह क्रम है ॥233॥

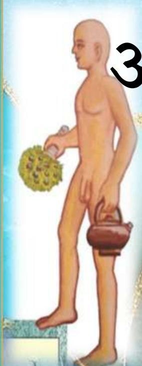

पल्य प्रमाण स्थिति-बंध होने के पश्चात् और स्थितिबंधापसरण होते हैं, जिससे कर्मों का स्थिति-बंध क्रमश: इस प्रकार होता है

वीसीय	तीसीय	चालीसीय
पल्य	पल्य × $\frac{3}{2}$	पल्य × 2
पल्य/संख्यात	पल्य	पल्य × $\frac{4}{3}$
पल्य/संख्यात	पल्य/संख्यात	पल्य
दूरापकृष्टि	पल्य/संख्यात	पल्य/संख्यात
पल्य/असंख्यात	दूरापकृष्टि	पल्य/संख्यात
पल्य/असंख्यात	पल्य/असंख्यात	दूरापकृष्टि
पल्य/असंख्यात	पल्य/असंख्यात	पल्य/असंख्यात

दूरापकृष्टि

$\frac{\text{पल्य}}{\text{जघन्य परीत असंख्यात}}$ से $\frac{\text{पल्य}}{\text{उत्कृष्ट संख्यात}}$ के बीच में जो एक-एक राशि है, वह दूरापकृष्टि कहलाती है ।

यह अनेकों भेद वाली है । उनमें से कोई एक भेद जो जिनेंद्र भगवान के द्वारा देखा गया है वह यहाँ पर दूरापकृष्टि जानना चाहिए ।

उदाहरण – माना कि पल्य, 960, उत्कृष्ट संख्यात = 15, जघन्य परीत असंख्यात = 16

तो $\frac{\text{पल्य}}{\text{जघन्य परीत असंख्यात}} = \frac{\mathbf{960}}{\mathbf{16}} = 60$ से $\frac{\text{पल्य}}{\text{उत्कृष्ट संख्यात}} = \frac{\mathbf{960}}{\mathbf{15}} = 64$ के बीच के जो विकल्प हैं

अर्थात् 61, 62, 63 – ये तीन 60 और 64 के बीच के विकल्प हैं ।

इन्हें ही दूरापकृष्टि कहते हैं ।

इसी प्रकार वास्तविक संख्या में जानना ।

स्थितिबंधापसरण

जहाँ वीसीय का पल्य प्रमाण बंध है, वहाँ तीसीय का डेढ़ गुणा याने 1.5 पल्य प्रमाण बंध है, तथा वहीं चालीसीय का दुगुना याने 2 पल्य प्रमाण बंध है ।

पल्य प्रमाण स्थिति-बंध से पल्य के संख्यात बहुभाग का अपसरण होता है, पल्य/संख्यात मात्र बंध होता है । अतः वीसीय का पल्य/संख्यात बंध होता है । शेष कर्मों का पल्य/संख्यात का अपसरण होकर शेष का बंध होता है ।

हजारों अपसरणों के हो जाने पर तीसीय का बंध भी पल्य प्रमाण हो जाता है । इसी समय चालीसीय का बंध एक तिहाई भाग अधिक होता है क्योंकि तीसीय से चालीसीय एक तिहाई अधिक है । अतः यहाँ चालीसीय का बंध पल्य + पल्य $\times \frac{1}{3}$ = पल्य $\times \frac{4}{3}$ होता है ।

स्थितिबंधापसरण

इसके आगे वीसीय, तीसीय का बंध पल्य/संख्यात होता है । परंतु वीसीय से तीसीय का बंध संख्यात गुणा है । चालीसीय का यथायोग्य साधिक पल्य प्रमाण बंध होता है ।

हजारों अपसरण जाने पर चालीसीय का बंध भी पल्य प्रमाण हो जाता है ।

इसके पश्चात् हजारों अपसरण होने पर वीसीय का अंतिम पल्य/संख्यात भागमात्र दूरापकृष्टिरूप बंध होता है । शेष कर्मों का पल्य/संख्यात प्रमाण बंध होता है । दूरापकृष्टि बंध से आगे उस प्रकृति का बंधापसरण असंख्यात बहुभाग होता है ।

स्थितिबंधापसरण

इसके पश्चात् हजारों अपसरण होने पर वीसीय का पल्य/असंख्यात प्रमाण बंध होता है । तीसीय का दूरापकृष्टि प्रमाण बंध प्राप्त होता है । उस समय चालीसीय का पल्य/संख्यात प्रमाण बंध होता है ।

इसके पश्चात् हजारों अपसरण हो जाने पर चालीसीय का भी बंध दूरापकृष्टि प्रमाण प्राप्त हो जाता है । इसी स्थान पर वीसीय, तीसीय कर्मों का बंध पल्य/असंख्यात होता है । परंतु वीसीय से तीसीय का बंध असंख्यात गुणा होता है ।

इसके आगे हजारों अपसरण होने पर सारे ही कर्मों का बंध पल्य/असंख्यात प्रमाण होता है । परंतु वीसीय से तीसीय का बंध असंख्यात गुणा है, तीसीय से चालीसीय का बंध असंख्यात गुणा है ।

- Reference : श्री लब्धिसार टीकासहित अनुवाद – ब्र. सुजाता रोटे, बाहुबली (वर्तमान में आर्यिका श्री शुद्धोहंश्री माताजी)
- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889

- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं लब्धिसार की प्लेलिस्ट चुनें ।